ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

अक्टूबर २०१५ Date of Printing = 05-10-15
प्रकाशन दिनांक= 05-10-15

वर्ष ४४ : अङ्क १२
दयानन्दाब्द : १९१
विक्रम-संवत् : आश्विन-कार्तिक २०७२
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११६

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस लेख में

- ❑ गोदुग्ध अमृत है 2
- ❑ वेदोपदेश ३
- ❑ राष्ट्रभाषा हिन्दी 5
- ❑ कहाँ से कहाँ.... ६
- ❑ छान्दोग्य का प्रथम... 10
- ❑ कर्मयोगी कलाम 13
- ❑ अध्यात्मवाद १५
- ❑ संसार को किसने..... १७
- ❑ वेदों में विज्ञान 19
- ❑ इतिहास प्रदूषण का अवलोकन 21

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण ३००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) ५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

गोदुग्ध अमृत है।

(आचार्य ब्र0 नन्दकिशोर)

गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि अनेक पशुओं का दूध प्रयोग में लाया जाता है, किन्तु गोदुग्ध ही सर्वश्रेष्ठ और अमृत है। महाभारत के अनुशासन पर्व में लिखा है-

"अमृतं वै गवा क्षीरम्" अर्थात् गोदुग्ध ही वास्तव में अमृत है।

हमारे शरीर के लिए दूध की अत्यधिक आवश्यकता है। यदि बच्चे को दूध यथोचति मात्रा में नहीं मिलता, तो उसके शरीर का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। वैसे तो दूध सभी अवस्थाओं में श्रेष्ठ और पथ्य है, किन्तु वृद्धि अवस्था में 16 वर्ष से 40 वर्ष तक नवयुवकों के लिये अत्यावश्यक है। "क्षीरमोजस्करं पुंसाम्" तथा "पयसा वर्धते तनुः" के अनुसार दूध से बल, वीर्य, ओज, कान्ति और शरीर की वृद्धि होती है। अतः प्रतिदिन के भोजन में दूध का अपना विशेष स्थान है। दूध सर्वश्रेष्ठ और पूर्ण भोजन है। डॉक्टरों के मतानुसार इसमें विटामिन ए, बी, डी, जी होते हैं। दूध में सभी पोषक एवं जीवनीय तत्व विद्यमान हैं। अतः केवल दुग्धाहार से ही शरीर का पूर्ण विकास हो सकता है। संसार में इसके तुल्य अन्य कोई पदार्थ नहीं जिस पर जीवन निर्वाह या शरीर का विकास किया जा सके। गोमाता की यह अद्वितीय देन है। धन्वन्तरीय निघण्टु में गोदुग्ध के गुण इस प्रकार लिखे हैं-

पथ्यं रसायनं बल्मं हृद्यं मेध्यं गवां पयः।
आयुष्यं पुंस्त्वकृद्धात रक्तविकारनुत्।। 164।।
(सुवर्णादि षष्ठो वर्गः)

गोदुग्ध पथ्य-सब रोगों व अवस्थाओं में सेवन करने योग्य रसायन, बलकारक, हृदय के लिये हितकारी मेधा (बुद्धि) को बढ़ाने वाला, आयु को बढ़ाने वाला, पुरुषत्व शक्तिवर्धक, वातनाशक तथा रक्त पित्त के विकारों के रोगों का नाश करने वाला है।

सर्वं दुग्धमभिष्यन्दि गव्यं तेभ्यो दिविष्यते।
वाजी भवति दुग्धेन बलं चाप्युपजायते।।

अर्थात् सभी प्रकार के दूध रेचक होते हैं, किन्तु गाय के दूध का गुण इनसे सर्वथा भिन्न है। यह गाय का दूध बाजीकरण में जहाँ सहायक होता है, वहाँ बलवर्धक भी होता है।

अन्नपान विधि के प्रकरण में (सूत्रस्थान अध्याय 27) चरक कहते हैं 'क्षीरं जीवयति' अर्थात् दूध जीवनदाता है। इसी अध्याय के श्लोक 217 में गोदुग्ध के सम्बन्ध में लिखा है-

स्वादु शतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः।।

गाय के दुध में दस गुण होते हैं। वह स्वादिष्ट, ठण्डा, कोमल, चिकना, गाढ़ा, सौम्य (सात्त्विक), लसदार, भारी, बाहरी प्रभाव को देर से ग्रहण करने वाला और और चित्त को प्रसन्न करने वाला होता है।

आयुर्वेद का एक ग्रन्थ है 'वनौषधि चन्द्रोदय' जिसकी पृष्ठ संख्या 2500-2600 के लगभग है। इस निघण्टु के मूल लेखक ने चरक के नाम पर दूध के वर्णन में पञ्चम भाग में एक बहुत ही मूल्यवान दुग्ध कल्प की चर्चा की है। वह लिखता है एक सौ पच्चीस गौओं को प्रतिदिन उड़द के पत्ते या बिदारीकन्द खिलाना चाहिए।

फिर उन 125 गायों का जो दूध निकले, वह 25 गायों को पिलाना चाहिए और उन पच्चीस गायों का जो दूध निकले, वह पाँच गायों को पिलाना चाहिए, इसके बाद फिर उन पाँच गायों का जो दूध निकले वह एक गाय को पिलाया जाए। उस एक गाय का जो दूध होगा उस से धातु क्षय, राज्यक्षमा आदि के रोगी को अपूर्व लाभ होता है।

रोगी के शरीर में एकदम नया रक्त, बल, ओज, चैतन्यता और वीर्य उत्पन्न होकर अल्प समय में ही शरीर को शक्ति का भण्डार बना देता है।

शेष अगले अंक में.....

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश (१) जगत्=यज्ञ की छः ऋतुएँ ही साधक हैं (२) असंख्य जल आदि वस्तुएं व्यवहार की साधक हैं। (३) बहुत से पदार्थ व्यवहार के योग्य हैं। (४) सब प्राणी-अप्राणी होता संग करते हैं। (५) ज्ञान की प्रकाशक समिधायें ही तीन प्रकार की विद्याएँ हैं॥

प्रजापतिः ऋषिः। समिधा-ज्ञानप्रकाशः देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वर॥

पूर्व प्रश्नानाम् उत्तराण्याह॥

पूर्व मन्त्र में उक्त प्रश्नों के उत्तरों का उपेदश किया है।

ओ३म् षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः।
यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतार ऽ ऋतुशो यजन्ति॥

(यजु० २३। ५८)

पदार्थ **(षट्)** ऋतवः **(अस्य) (विष्ठाः) (शतम्) (अक्षराणि)** उदकानि **(अशीतिः)** उपलक्षणमेतद-संख्यस्य **(होमाः) (समिधः)** समिध्यते प्रदीप्यते ज्ञानं याभिस्ताः **(ह)** किल **(तिस्रः) (यज्ञस्य) (ते)** तुभ्यम् **(विदथा)** विज्ञानानि **(प्र)** प्रकर्षेण **(ब्रवीमि) (सप्त)** पञ्च प्राणा मन आत्मा च **(होतारः)** दातार-आदातारः **(ऋतुशः) (यजन्ति)**

सपदार्थान्वयः हे जिज्ञासवः! **(अस्य)** यज्ञस्य **(षट्)** ऋतवः **(विष्ठाः) (शतम्) (अक्षराणि) उदकानि (अशीतिः)** उपलक्षणमेतदसंख्यस्य **(होमाः) (तिस्रः ह)** किल **(समिधः)** समिध्यते=प्रदीप्यते ज्ञानं याभिस्ताः **(सप्त)** पञ्च प्राणा मन आत्मा च **(होतारः)** दातार आदातारः **(ऋतुशः)** ऋतुमृतु प्रति **(यजन्ति)** संगच्छन्ते? इत्यत्र **विषये (विदथा)** विज्ञानानि **(ते)** तुभ्यम् अहं **(प्रब्रवीमि)** प्रकर्षेण **(ब्रवीमि)**

भाषार्थ : हे जिज्ञासु लोगो! **(अस्य)** इस **(यज्ञस्य)** जगत् की **(षट्)** छः ऋतुएँ **(विष्ठाः)** स्थिति की आधार हैं **(शतम्)** असंख्य **(अक्षराणि)** जल आदि वस्तुएँ हैं **(अशीतिः)** अस्सी अर्थात् उपलक्षण से असंख्य **(होमाः)** देने-लेने के व्यवहार हैं **(तिस्रः)** तीन विद्याएँ **(ह)** निश्चय से **(समिधः)** ज्ञान आदि की प्रकाशक हैं **(सप्त)** पाञ्च प्राण, मन और आत्मा ये सात **(होतारः)** देने-लेने वाले होता लोग **(ऋतुशः)** प्रत्येक ऋतु में **(यजन्ते)** संग करते हैं, उस यज्ञ=जगत् के **(विदथा)** विज्ञानों का **(ते)** तेरे लिए मैं **(प्र + ब्रवीमि)** उपदेश करता हूँ।।

भावार्थः हे ज्ञानमीप्सवो जनाः! यस्मिन् यज्ञे षट् ऋतवः स्थितिसाधकाः असंख्यानि जलादीनि वस्तूनि व्यवहारसाधकानि बहवो व्यवहारयोग्याः पदार्थाः सर्वे प्राण्यप्राणिनो होत्रादयः संगच्छन्ते यत्र च ज्ञानादि प्रकाशकः त्रिविधाः विद्याः सन्ति, तं यज्ञं यूयं विजानीत॥

भावार्थ : हे जिज्ञासु लोगो! जिस यज्ञ में छः ऋतुएँ स्थिति की साधक हैं, असंख्य जल आदि वस्तुएँ व्यवहार की साधक हैं, बहुत से व्यवहार के साधक पदार्थ हैं, सब प्राणी और अप्राणी एवं होता आदि लोग संग करते हैं, और श्रद्धा ज्ञान आदि की प्रकाशक तीन प्रकार की विद्याएँ हैं, उस यज्ञ को तुम जानो॥

(''दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर'' से उद्धृत, व्याख्याता स्व० श्री पं० आचार्य सुदर्शनदेव)

राष्ट्रभाषा हिन्दी

(धर्मपाल आर्य)

किसी राष्ट्र की पहचान जहाँ उसकी संस्कृति, सभ्यता, उसकी वेश-भूषा, उसके रहन सहन तथा उसके खान-पान से होती है, वहीं उसकी पहचान उसकी भाषा से होती है, अपितु कहना चाहिए कि उपरोक्त पहचानों की अभिव्यक्ति का माध्यम भी भाषा होती है। जैसे बिना वाणी के प्राणी गूंगा होता है, ठीक उसी प्रकार बिना भाषा के राष्ट्र भी गूंगे के समान होता है। भाषा के महत्व को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने अभिव्यक्त करते हुए लिखा है

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल।।
अँगरेजी पढ़िके जदपि, सब गुन होत प्रवीन।
पै निज भाषा ज्ञान बिन, रहत हीन को हीन।।"

अपनी भाषा अपने आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, वहीं अपनी भाषा अपनी राष्ट्रीयता की अमिट निशानी है। भावों की अभिव्यक्ति के माध्यम (हिन्दी) को तथा राष्ट्रीयता की अमिट निशानी (हिन्दी) को अपने ही राष्ट्र में अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। क्या कारण है कि स्वतन्त्रता के लगभग 68 वर्षों बाद भी हिन्दी को उसका राष्ट्र भाषा का सम्मान नहीं मिल पाया या हम दिला नहीं पाये? प्रबुद्ध पाठकगण! उपरोक्त प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर आपके समक्ष रखने का प्रयास करूँगा। 15 अगस्त, 1947 को देश अंग्रेजों की पराधीनता से आजाद हुआ। उसके पूर्व नेहरू ने अपनी वर्ष 1928 की वार्षिक रिपोर्ट में कहा कि हिन्दुस्तानी अर्थात् हिन्दी भाषा भारत की राजभाषा होगी परन्तु कुछ समय के लिए अंग्रेजी का उपयोग जारी रहेगा। सन् 1918 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में सभापति पद से भाषण देते हुए गाँधी जी ने कहा था "मेरा यह मत है कि हिन्दी ही हिन्दुस्तान की राजभाषा हो सकती है और होनी चाहिए।" वर्ष 1925 में कानपुर में कांग्रेस के अधिवेशन में गान्धी जी की प्रेरणा से प्रस्ताव पारित हुआ कि कांग्रेस का, कांग्रेस महासमिति का और कार्यकारिणी समिति का कामकाज आमतौर पर हिन्दी में चलाया जायेगा। 1927 में सी० राजगोपालाचार्य ने दक्षिण भारतीयों को हिन्दी सीखने की सलाह देते हुए कहा "हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा तो है ही, वहीं जनतन्त्रात्मक भारत में राजभाषा भी होगी।" आजादी के लगभग दो वर्षों के बाद यानि 14 सितम्बर 1949 को हिन्दी को राजभाषा घोषित किया गया। 1955 को बाल गंगाधर खेर की अध्यक्षता में प्रथम राजभाषा आयोग का गठन किया गया, जिसने 31 जुलाई 1956 को रिपोर्ट देते हुए कहा कि पूरे देश में आध्यात्मिक स्तर पर हिन्दी को अनिवार्य किया जाए। देश में न्याय देश की भाषा में किया जाए तथा जनतन्त्र में अखिल भारतीय स्तर पर अंग्रेजी का प्रयोग संभव नहीं। आयोग की उपरोक्त सिफारिशों का आयोग के दो सदस्यों बंगाल के सुनीति कुमार चटर्जी तथा तमिलनाडु के पी० सुब्बोरोयान ने विरोध करते हुए राजभाषा आयोग पर हिन्दी का पक्ष लेने का आरोप लगाया और इस प्रकार हिन्दी को राष्ट्रभाषा या राजभाषा का स्थान मिलने का सपना आयोग की सिफारिशों तक सिमटकर रह गया। इसके बाद 16 नवम्बर 1957 को गोविन्द बल्लभ पन्त की अध्यक्षता में संसदीय राजभाषा समिति का गठन किया गया, जिसने 8 फरवरी 1957 को अपनी सिफारिश में कहा- "हिन्दी संघ की राजभाषा का स्थान जल्दी से जल्दी ले, लेकिन इस परिवर्तन के लिए कोई निश्चित तारीख नहीं दी जा सकती। यह परिवर्तन धीरे-धीरे स्वाभाविक रीति से होना चाहिए। 1965 तक अंग्रेजी प्रधान राजभाषा और हिन्दी सहायक राजभाषा रहनी चाहिए तथा 1965 के बाद जब हिन्दी संघ की प्रधान राजभाषा हो जाये तब अंग्रेजी संघ की सहायक

संघ राजभाषा रहनी चाहिए।'' पन्त समिति की सिफारिशों से राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन तथा सेठ गोबिन्द दास ने अपनी असहमति व्यक्त की तथा आरोप लगाया कि सरकार हिन्दी को राजभाषा के रूप में प्रस्थापित करने के लिए आवश्यक कदम नहीं उठा रही। इसके साथ ही पन्त समिति के उपरोक्त सदस्यों ने अंग्रेजी को राजभाषा बनाए रखने का भी घोर विरोध किया। मैं अपने पाठकों का ध्यान एक बार पुनः उस प्रश्न की ओर खींचना चाहूँगा कि क्या कारण है कि हिन्दी को अभी तक राजभाषा या राष्ट्रभाषा का स्थान नहीं मिल पाया अथवा हम दिला नहीं पाये? हमने अभी 1928 में दी गयी नेहरू की रिपोर्ट को पढ़ा, हमने 1955 में बी०जी०खैर आयोग द्वारा दी सिफारिशों को पढ़ा तथा 1957 में दी गयी पन्त समिति के सुझावों को भी अध्ययन किया। उसके बाद मुझे यह लिखते हुए बड़ा दुःखद आश्चर्य हो रहा है कि केवल खैर आयोग की सिफारिशों को छोड़कर बाकी नेहरू रिपोर्ट व पन्त समिति हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी के ही पक्ष-पोषक हैं। नेहरू रिपोर्ट तथा पन्त समिति का हिन्दी के प्रति जिस तरह का उपेक्षा भाव रहा है, उसे मैं हिन्दी को राष्ट्रभाषा या राजभाषा का स्थान न मिल पाने का सबसे बड़ा कारण और बाधक मानता हूँ। उसके बाद आने वाली सरकारों का व्यवहार भी लगभग उन्हीं पुराने सिद्धान्तों पर चलता रहा और किसी ने भी हिन्दी को उसका समुचित स्थान दिलाने का गम्भीरता से प्रयास नहीं किया। हिन्दी के सन्दर्भ में यदि मैं संवैधानिक बिन्दुओं की बात करूँ तो संविधान की धारा 343 से लेकर 351 तक धाराएं ऐसी हैं जो या तो हिन्दी को या संघ (भारत देश) की प्रादेशिक भाषाओं को आगे बढ़ाने का सरकार को आदेश या निर्देश दे रही हैं। स्वतन्त्रता संग्राम में क्रान्तिकारियों के लिए यदि सम्पर्क की कोई भाषा थी तो केवल मात्र हिन्दी थी, परतन्त्र भारत में भी आपसी व्यवहार और सम्पर्क की भाषा हिन्दी थी। असंख्यों साहित्यकार व कवि हुए, जिन्होंने हिन्दी में अपनी रचना कर हिन्दी को और हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने का अविस्मरणीय काम किया है। अनेक सामाजिक संगठनों ने हिन्दी को आगे बढ़ाने में उल्लेखनीय योगदान दिया है, जिनमें आर्य समाज का स्थान सर्वोपरि है। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती मूलतः गुजराती भाषी होने के बाद भी आजीवन संस्कृत, हिन्दी के प्रचार-प्रसार में लगे रहे तथा ऋषि ने अपने समस्त ग्रन्थों की रचना न केवल हिन्दी भाषा में की अपितु अधिकांश शास्त्रार्थ भी हिन्दी भाषा में ही किए। महर्षि कहा करते थे "हिन्दी भाषा के माध्यम से समस्त राष्ट्र को एक एकता के सूत्र में पिरोया जा सकता है।'' पिछले महीने (सितम्बर) में भोपाल के अन्दर विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें भारत समेत विश्व भर के हिन्दी साहित्यकारों, कवियों, लेखकों व विद्वानों ने भाग लिया। सभी ने एक स्वर में हिन्दी भाषा और उसके साहित्य की जहाँ मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की, वहीं हिन्दी भाषा और उसके साहित्य को और अधिक समृद्ध बनाने की आवश्यकता पर बल दिया। अपने उद्‌बोधन में प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने भी हिन्दी भाषा की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की और कहा "मैं हिन्दी भाषा के द्वारा ही 125 करोड़ देशवासियों से जुड़ पाया हूँ।'' हिन्दी भाषा को समृद्ध करने में दक्षिण भारतीय लेखकों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। श्री सी० राजगोपालाचार्य, श्री टी० विजय राघवाचार्य, श्री सी०पी० रामास्वामी अय्यर, अनन्त शयनम् आयंगर, श्री एस.निज लिङ्गप्पा, श्री रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर, श्री के०टी० भाष्यम्, आर० वैंकटराम शास्त्री तथा श्री एन० सुन्दरैया आदि अनेक ऐसे दक्षिण भारतीय महानुभाव थे, जिन्होंने हिन्दी की महत्ता की न केवल मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की अपितु हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाए जाने की आवश्यकता को भी दृढ़ता के साथ दोहराया। ढुलमुल रवैया अपनाने वाला कमजोर राजनीतिक नेतृत्व, पन्त समिति और नेहरू रिपोर्ट को मैं हिन्दी के विकास में अवरोध का

शेष पृष्ठ 12 पर

कहाँ से कहाँ गया इतिहास

(राजेशार्य आट्टा)

प्रिय पाठकवृन्द्! अपने देश में इतिहास लेखन का कार्य कभी निस्स्पृह होकर वनों में निवास करने वाले ऋषि-मुनि करते थे। उनके इतिहास में केवल तिथि क्रम से घटनाओं का संग्रह नहीं होता था, अपितु साधरण जन के मार्गदर्शन हेतु जीवनोत्थान की बातें होती थीं। उपनिषदों व ब्राह्मण ग्रन्थों में ऐसा ही इतिहास वर्णित है। राजा लोग भी वनों में जाकर ऋषियों से इतिहास सुना करते थे। तब इतिहास का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होता था। इसीलिए संस्कृत-ग्रन्थों में इतिहास की परिभाषा मिलती है-

धर्मार्थ काममोक्षाणामुपदेश समन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथा युक्तमितिहासं प्रचक्षते।।

रामायण, महाभारत आदि लिखने वाले ऋषियों का यही उद्देश्य था। बाद में इतिहास की जगह कहानियों ने ले ली और महात्मा बुद्ध की जातक कथाओं की तरह वैदिक आख्यानों और ऐतिहासिक व्यक्तियों को मिलाकर पुराणों की रचना की गई, जिनमें अधिकतर कल्पनाएँ ही थीं। वास्तव में ये मनोरंजन के लिए ही थीं, पर बाद में धर्म के साथ जुड़ गईं, जो इतिहास को विकृत करने में सहायक हुईं। दुर्भाग्य से उनके लेखक के रूप में महर्षि वेदव्यास का नाम प्रचारित किया गया और स्वार्थी व धूर्त लोगों के जाल में फँसे भोले लोगों ने बिना किसी तर्क-वितर्क के इसे स्वीकार कर लिया। जब विदेशी यात्री भारत आये, तो उन्हें यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि भारत के लोग इतने भोले थे कि कैसी भी चमत्कारिक कहानी पर विश्वास कर लेते थे। वे इतिहास की वास्तविकता में जाना भूल चुके थे। हिन्दुओं के सरल स्वभाव का सूक्ष्म दृष्टि से पर्यवेक्षण करके अल्बेरूनी ने यह कहा कि हिन्दू लोग सच्चे इतिहास की परम्परा की ओर से उदासीन रहते हैं, यह बड़े परिताप की बात है। अपने राज्य की विश्वस्त परम्परा प्रदर्शित करने की ओर वे प्रवृत्त ही नहीं होते। कदाचित उनके इतिहास को कोई परखने के लिए अग्रसर होता है, तो वे घबरा जाते हैं।

मुस्लिम काल में इतिहास लेखन का यह कार्य राजा के वैतनिक लेखक करते थे। वर्तमान इतिहास उन्हीं के ग्रन्थों को प्रमाण मानते हैं, पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वे लेखन अपने स्वामी के दोष और उनके शत्रु (हिन्दू राजा) की प्रशंसा कैसे लिख सकते थे! स्पष्ट है इतिहास सत्य से दूर चला गया। इस काल के कुछ विदेशी यात्रियों (यूरोपियों) ने भी अपने यात्रा वृतान्त लिखे, पर उनमें भी पूर्ण सत्यता नहीं आ पाई, क्योंकि उनमें से कई यहीं के होकर रह गये और यहीं मर गये। हाँ, फ्रांस यात्री बर्नियर जैसे कुछ लेखकों ने बहुत सी सच्चाई लिखी, क्योंकि वे अपने देश की धरती पर वापस जाकर लिख रहे थे। कुछ सच्चाई अकबर के लेखक बदायूनी की तवारिख में भी मिलती है क्योंकि उसके द्वारा लिखित वर्णन उसकी मृत्यु के बाद खोला गया था। अन्यथा बाबर से लेकर औरंगजेब तक सबके इतिहास स्वयं के द्वारा, इनके रिश्तेदारों द्वारा अथवा वैतनिक इतिहासकारों द्वारा ही लिखित थे। उनमें उनकी महानता के विपरीत कुछ मिल ही नहीं सकता। यदि आज की परिस्थिति में (हिन्दुओं को) कुछ अजीब लगता भी है, तो उसे तथाकथित धर्मनिरपेक्ष लोग मुस्लिम तुष्टीकरण के लिए सामने आने ही नहीं देते। देखिये-

तुजुक-ए-बाबरी, पृ० 19 पर अनुवादक डॉ० मथुरा लाल शर्मा ने लिखा है- "इस प्रकार जब मैं (बाबर) ने बाजोर जीत लिया, तो मुझे पूर्ण सन्तोष हुआ और 9 मुहर्रम (11 जनवरी) को मैंने एक कोस की दूरी पर शत्रुओं की खोपड़ियों का मीनार बनाने का आदेश दिया।"

(खानवा की लड़ाई में) "बहुत सारे (हिन्दु) मारे गये और धराशायी हो गये। कितने ही नष्ट हो गये और कव्वों के व चीलों के भोजन बन गये। मृतकों के शरीरों से टेकरियाँ बन गईं और उनके सिरों से मीनार

बनाये गये।" (पृ० 115)

"मैंने आदेश दिया कि उस पर काफिरों की खोपड़ियों का एक मीनार बनाया जाये।" (पृ० 116)

"चन्देरी से उत्तर-पश्चिम में एक टेकरी के ऊपर मैंने काफिरों का एक मीनार बनवाया।" (पृ० 129)

जबकि अनुवादक श्री केशव कुमार ठाकुर ने उपरोक्त स्थलों पर लिखा है- (बाजोर में) मैंने आदेश दिया कि यहाँ पर विजय के रूप में एक स्तम्भ किसी ऊँचे स्थान पर तैयार कराया जाये। (पृ० 353)

(खानवा की लड़ाई में) जो लोग मारे गये थे, वे युद्ध स्थल में कटे पड़े थे और चीलें तथा कौये उनको खा रहे थे। पड़ी हुई लाशों से ऊँचे-ऊँचे टीले बन गये थे। (पृ० 552)

"मैंने अपने आदमियों को बुलाकर और परामर्श करके यह निश्चय किया कि .... स्मारक के रूप में एक स्तम्भ तैयार कराया जाय।" (पृ. 555)

"कुछ समय के पश्चात् उस प्रसिद्ध किले (चन्देरी) पर हमारे आदमियों ने अधिकार कर लिया।" (पृ० 557)

सम्भवतः ऐसे ही अनुवादों के कारण 'भारत की खोज' में नेहरू ने क्रूर, निर्दयी व बर्बर आक्रमणकारी बाबर को आकर्षक व्यक्तित्व का धनी, नयी जागृति का शहजादा, बहादुर, साहसी व कला और साहित्य का शौकीन लिखा हो। हमें तो आश्चर्य होता है कि इतने बड़े ग्रन्थ का लेखक महमूद गजनवी के आक्रमण के प्रसंग भी बिना विचारे ही अल्बरूनी की नकल कर लिखता है- "हिन्दू धूलकणों की तरह चारों तरफ बिखर गए और उनकी याद भर लोगों के मुँह में पुराने किस्से की तरह बाकी रह गई। (भारत की खोज, पृ० 73)

फिर यदि नेहरू को प्रमाण मानकर आज का कोई लेखक बाबर का गुणगान करे, तो कोई आश्चर्य नहीं। 'प्राचीन भारत को जाट की देन' के लेखक ने भी लिख दिया- "बाबर एक राजनेता के अलावा शानदार कवि, कानून निर्माता व लेखक था। वो संगीतकार भी था। उसकी आत्मकथा की तुलना संसार में किसी आत्मकथा से नहीं की जा सकती।" (पृ० 173)

अब दूसरा पक्ष देखिये, 'तुजुक-ए-बाबरी' में बाबर ने राणा सांगा पर मिथ्या आरोप लगाया है कि उसने मेरी सहायता लेने के लिए मेरे पास दूत भेजा। बस इतने से ही भारत के सभी सेकुलर (हिन्दू-विरोधी) इतिहास लेखक बिना विचारे ही राणा सांगा को देशद्रोही प्रचारित कर रहे हैं। देखा-देखी 'जाट की देन' के लेखक को भी सनक चढ़ी और बिना प्रसंग ही लिख दिया कि राणा सांगा ने बाबर को लोधी पर हमला करने का बुलावा दिया। (पृ० 155)

जिन्हें हिन्दुओं के प्रति बाबर द्वारा की गई क्रूरता (मृतकों के भी सिर कटवाकर मीनार बनवाना) दिखाई नहीं दी, उन्हें राणा सांगा का दूत बाबर से मिलता मानो प्रत्यक्ष दीख रहा है। ये सोचना और समझना भी नहीं चाहते कि इब्राहीम लोधी को तो राणा सांगा ने पहले ही हरा दिया था। फिर उसी काम के लिए एक ऐसे विदेशी की सहायता राणा क्यों चाहेगा, जिसका अभी तक भारत में पैर भी नहीं टिका और राणा के राजदूत मिलने की बात बाबर ने पहले (मिलते समय) क्यों नहीं लिखी, जैसे पंजाब के सूबेदार और इब्राहीम लोधी के चाचा अलाउद्दीन आलम खाँ के मिलने का वर्णन किया है।

अपने मजहब की दृष्टि में औरंगजेब भले ही जिन्दा पीर कहलाए, पर भारत और भारतीय (हिन्दू) के लिए तो वह अत्याचारी नराधम से बढ़कर कुछ नहीं था। भारत विरोधी लेखक भारत का अन्न खाकर भी औरंगजेब को जिन्दा पीर लिखते हैं उन्हीं की नकल कर 'जाट की देन' का लेखक बिना प्रसंग ही दो कदम आगे बढ़कर लिखता है- "खुद वो (औरंगजेब) एक इमानदार शासक था, कभी शराब नहीं पीता था...। " (पृ० 425)

यदि औरंगजेब ईमानदार था, तो अपने पिता के जीते जी राज्य के लिए संघर्ष क्यों किया? जिस छोटे भाई मुराद की सहायता से राज्य प्राप्त किया, फिर उसी को शराब पिलाकर बन्दी क्यों बनाया और तीन वर्ष कैद में रखकर वहीं उसकी हत्या (4 दिसम्बर 1661 ई०) क्यों करवाई? अपने पिता को कैद में डालकर लगभग 8 वर्ष तड़पाने में भी उसकी ईमानदारी ही

होगी? अपने पुत्रों व पुत्री को भी जेल में डालने व वहीं मारने (एक पुत्र व एक पुत्री जेल में ही मरी थी) में भी उसकी ईमानदारी ही झलकती होगी? गुरू तेग बहादुर व भाई मतिदास आदि को कटवाने, शम्भा जी के टुकड़े टुकड़े कर कुत्तों को खिलाने, गुरु गोविन्द सिंह के छोटे बच्चों को दीवार में चिनवा कर मारने में भी उसकी ईमानदारी ही झलकती होगी? औरंगजेब को ईमानदार बताने वाला लेखक भूल गया कि उसकी बेईमानी व क्रूरता के विरुद्ध ही जाटवीरों ने विद्रोह किया था और लेखक के ईमानदार शासक ने जाट सरदार गोकुला को कुल्हाड़ों से कटवाया था व उसके बेटे-बेटी को मुसलमान बनाया था। सन्धि करके शिवाजी को आगरा बुलाकर बन्दी बनाने में भी उसकी ईमानदारी होगी? जिस जयसिंह (मिर्जा राजा) से शिवाजी को हरवाया, फिर उसी को विष पिलाकर मरवाने और जसवंत सिंह की मृत्यु के बाद उसके बेटे का हक छीनने पर भी वह ईमानदार रहा? हिन्दुओं पर जजिया लगाने व उन्हें जबरदस्ती मुसलमान बनाने में उसकी कौन सी ईमानदारी झलकती है? फिर लेखक उस (औरंगजेब) की तरह ईमानदार क्यों नहीं बन जाता? माना औरंगजेब ने राज्य से एक पैसा नहीं लिया, पर राज्य के लिये भाई-भतीजों की जान तो ली थी। यह तो कहा जाता है कि वह टोपी बनाकर और उन्हें बेचकर गुजारा करता था, पर यह नहीं बताते कि खुशामदी दरबारी उसकी टोपी की हजारों रुपये बोली लगाते थे। दूसरों (हिन्दुओं) के पूजास्थल तोड़ने व उनका ईमान छीनने वाला भी ईमानदार था, तो बेईमान कौन होता है?

'भारत की खोज' के लेखक ने अंग्रेजों के सुर में सुर मिलाकर आर्यों को बार-बार विदेशी लिखा है, जबकि बाबर अकबर आदि विदेशी आक्रमणकारी मुगलों को भारतीय बताया है। उनके सेकुलर मजहब का पालन करते हुए 'मध्यकालीन भारत' के लेखक प्रो0 सतीशचन्द्र ने भी उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया है। फिर डॉ० रोमिला थापर जैसी लेखिका की पूजा करने वाला 'जाट की देन' का लेखक कैसे पीछे रहता। उसने भी लिख दिया- "भारतीय बादशाह हुमायूँ के एक कमाण्डर....।"

सोचिये, हुमायूं भारतीय कैसे हो गया? उसके पिता बाबर से फरगाना से भागकर काबुल (अफगानिस्तान) को जीता और वहीं से भारत पर आक्रमण किये थे। 1526 ई० में सफलता पाकर जेहाद के नाम पर काफिरों (हिन्दुओं) को काटकर गाज़ी बना था। भारत में मरने के बाद भी उसे उसकी इच्छानुसार काबुल में दफनाया गया था और हुमायूं उसी बाबर के साथ 17-18 वर्ष की अवस्था में आक्रमणकारी बनकर भारत आया था। फिर भी कुछ लोगों ने उसे भारतीय होने का सेर्टीफिकेट दे दिया और जिन आर्यों के विदेशी होने का कोई ठोस प्रमाण नहीं है, उन्हें विदेशी प्रचारित करने वालों की दुर्भावना को पाठक समझ सकते हैं।

'जाट की देन' के लेखक के इतिहास ज्ञान का एक प्रमाण और देखिये- "इस (जाट) विद्रोह में अकबर के जनरल व मन्त्री बीरबल व राजा मानसिंह मारे गये थे।" (पृ० 156 व 173)

इतिहासकार तो हमें बताते हैं कि बीरबल को 1583 ई० में उत्तर पश्चिमी सीमान्त पर युसुफजई अफगानों के विद्रोह को दबाने के लिये भेजा गया था, वहाँ उसकी हत्या कर दी गई। जबकि राजा मानसिंह तो बहुत बाद में मरा था। उसकी मृत्यु 1614 ई० में इलीचपुर में हुई थी अर्थात् मानसिंह बीरबल से 30-31 वर्ष बाद मरा था और लेखक ने उसे 31 वर्ष पूर्व ही बीरबल के साथ मार दिया।

फिर ऐसा इतिहासज्ञ किसी के बहकावे में आकर महाभारत में वर्णित जर्तिका जनजाति समुदाय को जाट मानकर आर्यों पर यह आरोप लगाए कि उन्होंने जाटों की निन्दा की है, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। उत्तर व दक्षिण भारत को लड़ाने के लिए अंग्रेजों ने आर्य व द्रविड़ जाति की कल्पना कर जो षड्यंत्र रचा था, सर जेम्स कैम्पवेल और ग्रियर्सन ने महाभारत में वर्णित जर्तिका को जाट बताकर उस षड्यंत्र में और विष घोल दिया, ताकि उत्तर भारत के आर्य भी परस्पर लड़ते रहें। पंचतंत्र में वर्णित ठग और ब्राह्मण की कहानी हमें

बताती है कि क्रमशः चार ठगों द्वारा दक्षिणा में मिली गाय की बछड़ी को बकरी कहने पर भ्रमित हुए ब्राह्मण ने उसे वास्तव में बकरी समझ कर छोड़ दिया और ठग उसे ले गये। हमारी भी तो यही अवस्था है। विदेशियों के कहने पर हमने अपना प्राचीन नाम 'आर्य' ही छोड़ दिया और अपना सम्बन्ध जर्तिका से जोड़ लिया।

प्रो० कालिका रंजन कानूनगो ने 1925 ई० में लिखे 'जाटों का इतिहास' में इस मत की समीक्षा करते हुए लिखा है- "जाट हिन्दुओं के कुछ संस्कार तो अवश्य मानते हैं।... बाहिकों (जर्तिका आदि) का विवाह उन्हीं के गोत्र में होता है, जो जाटों में नहीं होता। जाटों में उत्तराधिकार के वे ही नियम हैं, जो अन्य हिन्दुओं में पाए जाते हैं तथा उनके यहाँ बहन के पुत्र (भानजे)को उत्तराधिकार का स्वामी नहीं माना जाता, जैसा वाहिकों में होता था।... यह बात सम्भव प्रतीत नहीं होती कि एक गैर-महत्वपूर्ण जनजाति के नाम को, जो नैतिकता, चरित्र, शक्ति अथवा आचरण की शुद्धता में बदनाम हो, अफगानिस्तान से लेकर मालवा तक रहने वाले लाखों लोग अपना लें। इसके अतिरिक्त किसी भी जाट जनजाति को साकल (जार्तिका आदि) के साथ अपने सम्बन्धों की याद नहीं है; लगभग सभी का विश्वास है कि उन (सिन्ध-ईरान वासियों) के पूर्वज भारत के किसी अन्दरूनी भाग से इस भूमि पर निवास करने आये थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि जनजातीय नामों की ध्वनि में समानता के आधार पर सुझाए गए तारातम्य मात्र को उचित नहीं माना जा सकता।" (पृ० 6-7)

महाभारत कर्णपर्व के 39 से 45वें अध्याय में (कर्ण-शल्य वाद-विवाद में) दोनों ने एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए उल्टा-सीधा बोला है। कर्ण ने ईरान के जर्तिका जनजाति समुदाय के स्त्री-पुरुषों के दुर्गुण (मद्य, मांसाहार, व्यभिचार आदि) बताये हैं। विद्वानों की दृष्टि में इसका बहुत सा अंश प्रक्षिप्त है और सम्भवतः उस समय का है, जब विदेशियों के दुर्गुणों से बचने के लिए भारतीय लोग विदेश जाना पाप मानने लगे थे। वैसे भी, कर्ण युद्ध में जाने के लिए तैयार हो गया था और अपने ही सारथी से इतना व्यर्थ का वाद-विवाद, उसमें भी व्यक्तिगत बात को छोड़कर देश (ईरान) के सभी नागरिकों के दोष बताना प्रासंगिक नहीं लगता। जर्तिका को जाट बताना उससे भी अधिक अप्रासंगिक है। यूँ तो बा०रा०अयो० 32 में त्रिजट को द्विज लिखा है।

श्री जगदीश सिंह गहलोत ने 'ऐतिहासिक लेखमाला' में लिखा है कि जाट प्राचीन आर्य क्षत्रियों के वंशज हैं। नेसफिल्ड, मिलर, हेवेल, इलियट, चिन्तामणि वैद्य आदि इन्हें आर्य ही मानते हैं। भारतभूमि के बाहर भी जाट लोग गए हैं। इस संक्रमण के अवशेष ईरान इराक व शाम तक में प्राप्त हैं, जो वहाँ के रीति-रिवाजों और भाषा के शब्दों में दृष्टिगोचर होते हैं। ख्वाजा गुलामुस्सकलैन के अनुसार अमीर मुआविया ने तीस हजार जाटों को हिन्दुस्तान से लाकर इराक में आबाद किया था। नीज़ अब्बासियों के जमाने में इज़ारस जाट बुला कर आबाद किये गये थे। इस्लाम ग्रहण करने के बाद भी बहुत से लोग अपने पुराने रीति-रिवाज नहीं छोड़ पाये। ऐसी ही समानता आज मुस्लिम बन चुके सुमात्रा, जावा, बाली आदि देशों में भी देखी जा सकती है। सन् 1931 ई० में जापान आदि की यात्रा कर पं० कन्हैयालाल आर्योपदेशक ने लिखा था- ''इतिहासकार लेफिन्सटन के अनुसार 75 ई० में मालाबार के हिन्दू राजा सुमित्र ने सुमात्रा द्वीप बसाया था। अरब आक्रमण के समय आर्य राजा अमर को मुसलमान बना लिया गया। द्विजालय (जावा) में शैव मत का खूब प्रचार था। रामायण महाभारत का कावी भाषा में अनुवाद था। राजा च्याब्या के समय कवि पेनूलोह महाभारत की घटनाओं के चित्रों को इस ढंग से बनाया था, मानो महाभारत युद्ध जावा में ही हुआ था। 1478 ई० में अन्तिम राजा विज्ञान की हत्या कर मुसलमानों ने जावा पर अधिकार कर लिया। तलवार के जोर पर जावावासियों को मुसलमान बनाया गया, पर अभी भी जुकजा नगर में देवस्थान को देखकर लेखक को लगा जैसे कि वह काशी की गलियों में घूम रहा है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि की 12-12 फीट ऊँची मूर्तियाँ हैं। मन्दिर की

शेष पृष्ठ 16 पर

छान्दोग्य का प्रथम प्रपाठक, द्वितीय खण्ड

(उत्तरा नेरूरकर, बंगलौर, मो. - 09845057310)

पिछले महीने, मैंने छान्दोग्य के प्रथम प्रपाठक, प्रथम खण्ड में वर्णित ओम् की उद्गीथ रूप में उपासना करने का उपदेश विस्तार से बताया था। इसी विषय को आगे बढ़ाते हुए, मैं इस बार प्रथम प्रपाठक के द्वितीय खण्ड की व्याख्या कर रही हूँ। पिछली बार की तरह, यहाँ पर भी मेरी व्याख्या कुछ भिन्न है। जहाँ भिन्न है, वहाँ दर्शा दी है।

देवासुरा ह वै यत्र संयेतिरे उभये प्राजापत्यास्तद्ध देवा उद्गीथमाजह्रुरनेनैनानभिभविष्याम इति।। 1/2/1।।

प्रसिद्ध है कि प्रजापति की सन्तान, देव और असुर, किसी काल में युद्ध करने लगे। इसलिए देव उद्गीथ को ले आए और सोचने लगे कि इससे हम असुरों को जीतेंगे। यह औपमिक वर्णन है, जहाँ प्रजापति जीवात्मा है, और देव और असुर क्रमशः इन्द्रियों की सात्त्विक और तामसिक प्रवृत्तियाँ हैं। सो, ओम् की उपासना से सात्त्विक प्रवृत्ति बढ़ेगी और दुष्प्रवृत्तियों का नाश होगा, ऐसा जीवात्मा ने सोचा।

ते ह नासिक्यं प्रणमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे। तं हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात् तेनोभयं जिघ्रति सुरभि च दुर्गन्धि च पाप्मना ह्येष विद्धः।।1/2/2।।

उन देवों ने नासिका में स्थिति प्राण को उद्गीथ मानकर उपासना की, अर्थात् नासिका में स्थित प्राण पर ध्यान लगाया। परन्तु असुरों ने उस प्राण को पाप से बीन्ध दिया। इसलिए वह सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों ही सूँघता है। पाप से वह विद्ध है। अर्थात् आरम्भ में हमें नासिका स्थिति प्राणों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। परन्तु इससे हम कुछ ही दूर जा पाएंगे क्योंकि कभी सुगन्ध हमें विह्वल करेंगी और कभी दुर्गन्ध। इसलिए यह उपासना ब्रह्म को पाने के लिए पूर्ण नहीं है।

इसी प्रकार अगले प्रवाक में वाणी को अनुपयुक्त बताया गया क्योंकि वह सच भी बोलती है और झूठ भी। किसी मन्त्र का जप करके यदि हम उपासना करेंगे, तो कभी हम उसके अर्थ पर विचार करेंगे (सत्य बोलेंगे) और कभी नहीं (मन में कुछ और होठों से कुछ बोलेंगे)। इसलिए यह उपासना भी बहुत दूर नहीं ले जाती है।

फिर नेत्र से उपासना बताई गई, जहाँ किसी वस्तु को हम देखकर ध्यान लगाएँ। परन्तु आँख कभी दर्शनीय और कभी अदर्शनीय वस्तु देखती है। अर्थात् हम कभी केन्द्रित वस्तु पर ध्यान रखते हैं, और कभी हमारा ध्यान उस वस्तु से हट जाता है। इसलिए यह भी अपूर्ण है।

इसी प्रकार श्रोत्र श्रवणीय और अश्रवणीय दोनों को सुनता है। अर्थात् हम यदि किसी शब्द पर ध्यान लगायेंगे, तो कभी उसको सुनेंगे और बीच में कोई दूसरा शब्द आ गया तो उससे हमारा ध्यान टूट जायेगा।

फिर मन को उपासनीय बनाया। तो मन वह भी सोचता है जो सोचने योग्य है और जो सोचने योग्य नहीं है। मन की चंचलता के कारण उसको वश में रखना अतीव कठिन होता है।

अथ ह य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपसाञ्चक्रिरे।

तं हासुराः ऋत्वा विदध्वंसुर्यथाश्मानमाखणमृत्वा विध्वंसेत्।। 1/2/7।।

अन्त में, जो यह मुख्य प्राण है (मुख में स्थित अथवा प्रधान श्वास-निःश्वास), उसकी उन्होंने उपासना की। उस तक असुर पहुँच कर ध्वंस हो गए, जिस प्रकार कठिन पत्थर पर कोई अन्य वस्तु प्रहार करे, तो वही ध्वंस हो जाती है।

अर्थात् जब हम अपनी श्वास-निःश्वास पर ध्यान लगाते हैं, तो कोई भी वस्तु हमारा ध्यान डिगा नहीं सकती। प्राण धीरे-धीरे स्वयं हल्के हो जाते हैं, और ध्यान और भी गाढ़ा हो जाता है। सारी मनोवृत्तियाँ रुक जाती हैं, और परमात्मा का सान्निध्य होने लगता है।

एवं यथाश्मानमृत्वा विध्वंसत एवं हैव स विध्वंसते। य एवंविदि पापं कामयते। यश्चैनमभिदासति स एषोऽश्माखणः।।1/2/8।।

इसी प्रकार, जो भी इस उपर्युक्त रहस्य को जानने वाले के लिए किसी पाप की कामना करता है और उसको दबाता है, तो वह वैसे ही विध्वंस हो जाता है, जैसे कठिन पत्थर को चोट मारने पर कोई वस्तु विध्वंस हो जाती है। वह यह (तत्वज्ञ) कठिन पत्थर (चट्टान) हो जाता है।

उद्गीथ के तत्त्व, अर्थात् ब्रह्म, को जान लेने वाला सबसे ऊपर उठ जाता है। फिर कोई भी उसको हानि नहीं पहुँचा सकता।

नैवेतेन सुरुभि न दुर्गन्धि विजानात्यपहतपाप्मा ह्येष तेन यदश्नाति यत्पिबति तेनेतरान् प्राणानवत्येतमु एवान्ततोऽवित्त्वोत्क्रामति व्याददात्येवान्तत इति।। 1/2/9।।

पापरहित इस (मुख्य प्राण) से (योगी) न सुगन्ध (और अन्य उपरिलिखित सभी पाप से अयुक्त विषयों) को जानता है, न दुर्गन्ध (और अन्य उपरिलिखित सभी पापयुक्त विषयों) को जानता है। इसकी सहायता से (योगी) जो भी खाता और पीता है, उसे वह (मुख्य प्राण) अन्य प्राणों (अपान, समान, व्यान व उदान) की रक्षा करता है। यदि (मनुष्य) उसको इस प्रकार न जानता हुआ शरीर से उत्क्रमण करता है (मरता है), तो अन्त में वह मुँह खोल देता है (प्राण जैसे उससे क्षुभित होकर उसका मुँह फाड़ कर निकल जाते हैं)। यह अन्तिम वाक्य प्रचलित अर्थ है। मेरे अनुसार यह न पूर्व के वाक्यों से और न आगे के वाक्यों से मेल खाता है। अर्थ इस प्रकार अधिक ठीक लगते हैं- इस (पूर्वकथित पापयुक्त अथवा अपापयुक्त वृत्तियों) को न जानता हुआ, वह उनसे ऊपर उठ जाता है और अन्त में (प्राणों को भी वि+आ+ददाति=) छोड़ जाता है, मुक्ति प्राप्त कर लेता है। अर्थात् 'अवित्त्वा' के अर्थ 'न विजानाति' से जोड़ने चाहिए, न कि किसी अन्य अयोगी मनुष्य की चर्चा यहाँ लानी चाहिए।

तं हाङ्गिरा उद्गीथमुपासञ्चक्र एतमु एवाङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां यद्रसः।। 1/2/10।।

अङ्गिरा ऋषि ने उस मुख्य प्राण को उद्गीथ के रूप में उपासा। (योगी जन) उसको ही 'अङ्गिरस' मानते हैं क्योंकि वह अङ्गों का रस है (उनका आधार है)। यहाँ 'अङ्गिरा' को ऋषि न मानकर यदि हम यौगिक अर्थ लें- वह जिसने अङ्गों के आधार को जान लिया है, वह योगी- तो यह सभी उन योगियों के लिए सम्भव है, जिन्होंने मुख्य प्राण को अङ्गिरा के रूप में उपासा।

इसी प्रकार अगले प्रवाक में बताया गया है कि यह मुख्य प्राण 'बृहस्पति' भी माना गया है क्योंकि बड़ी वाणी का यह पति है, वाणी उस पर आश्रित है। वाणी इसलिए बड़ी है क्योंकि ज्ञानार्जन के लिए यह अनिवार्य है। सभी प्राणियों में केवल मनुष्य को वह प्राप्त है।

अगले प्रवाक में मुख्य प्राण को 'आयास्य' कहा गया है क्योंकि वह मुख से आता-जाता है।

तेन तं वको दाल्भ्यो विदाञ्चकार। स ह नैमिषीयामुद्गाता बभूव। स ह स्मैभ्यः कामानागायति।। 1/2/13।।

इस अपर्युक्त प्रकार से वक दाल्भ्य ऋषि ने उस उद्गीथ परमात्मा को जाना। वे नैमिषारण्य में रहने वाले अन्य ऋषियों के उद्गाता बन गए। वे उनकी कामनाओं को गाने लगे और उनको पूरा करने लगे।

यहाँ 'उद्गाता' का अर्थ यज्ञ में ऋग्वेद के मन्त्रों को बोलने वाला माना गया है, क्योंकि यह लौकिक अर्थ है। मेरे अनुसार 'उद्गीथ को कहने वाला इसलिए उद्गाता' अर्थ यहाँ अधिक सम्यक् है। सो, परात्मा को देख लेने के बाद, उन्होंने परमात्मा की ही सीख सबको दी। और ऋषियों की कामना क्या होती है? केवल प्रभु को पाना। सो, उन्होंने प्रभु की स्तुतियाँ, उसको पाने का मार्ग बताया, और अन्यों को भी उसे प्राप्त कराया। यही अर्थ यहाँ सन्दर्भ से उपयुक्त है।

आगाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम्।। 1/2/14।।

जो इस प्रकार जानकर अक्षर उद्गीथ को उपासता है, वह कामों को प्राप्त कराने वाला हो जाता है (कामों की व्याख्या पूर्ववत्)। यह अध्यात्म विषय पूरा हुआ (परमात्मा को कैसे पाएँ, यह ज्ञान पूरा हुआ)।

इस खण्ड में यह तो बताया ही गया है कि कैसे मुख्य प्राण पर ध्यान लगाने से ही परमात्मा-प्राप्ति होती है, परन्तु, मेरे अनुसार, इतनी लम्बी देवासुर की आख्यायिका देने का एक और भी प्रयोजन है। यहाँ ध्यान में मग्न होने का क्रम दिया गया है। ध्यानावस्थित होने के लिए, हमें पहले नासिका-स्थित प्राण पर ध्यान लगाना चाहिए। अर्थात् प्राणायाम करना चाहिए। कुछ समय बाद, हमें ओम् का जाप करना चाहिए। फिर बन्द चक्षु पर ध्यान करना चाहिए। फिर कानों में आती ध्वनियों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इस सबसे हमारा मन शान्त हो जायेगा। अब इसी शान्त मन को हमें देखना चाहिए। फिर हमें हृदय-प्रदेश पर ध्यान लगाकर, मुख्य प्राण को आते-जाते देखना चाहिए। जबकि सुगन्धि-दुर्गन्धि, सुन्दर दृश्य-बुरे दृश्य, अच्छी धुन-बुरी ध्वनि से हमारे मन में अनुकूल-प्रतिकूल विचार उठते हैं, प्राण के विषय में हम कुछ भी अच्छा-बुरा नहीं सोच सकते। इससे हमारा अन्तःकरण एकाग्र और निर्मल हो जाता है। यही इस खण्ड का उपदेश है।

ऋषियों की 'कामनाओं' को भी सही प्रकार से समझना चाहिए, क्योंकि यह वचन अनेक बार उपनिषदों में आता है- ये कोई प्रजा-पशु की कामनाएँ नहीं होती हैं। वे तो सब विरक्तात्माएँ हैं, जिन्होंने संसार का कारोबार पहले छोड़ दिया होता है। उनकी एक ही कामना बच रहती है- वह है परमात्मा का सान्निध्य। उस उद्गीथ के प्राप्त हो जाने पर उनकी खोज पूरी हो जाती है, उनकी अन्तिम इच्छा पूरी हो जाती है, उन्हें जैसे सारे सुख मिल जाते हैं। जहाँ-जहाँ उपनिषदों में आता है कि ईश्वर को पाने वाला प्रजावान्-पशुवान् हो जाता है, वहाँ ऐसा इसलिए नहीं लिखा होता है कि उन्हें वास्तव में ये सब प्राप्त हो जाते हैं, परन्तु इसलिए कि जिससे हम उनके आनन्द को कुछ-कुछ समझ पाएँ। हमारी बुद्धि में भौतिक सुख ही सुख होते हैं। परन्तु परमात्म-सुख तो अलौकिक है, उसे समझाना ही असम्भव है!

पहले खण्ड में ओम् को उद्गीथ बताया गया था, उसको वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय बताया गया था। उसी विषय को आगे बढ़ाते हुए, इस खण्ड में उद्गीथ को उपासना के द्वारा प्राप्त करने के लिए एक आलंकारिक आख्यायिका के साथ समझाया गया है। यही इस खण्ड का आध्यात्मिक विषय है।

❑❑

पृष्ठ 5 का शेष

सबसे बड़ा कारण मानता हूँ। सामाजिक संगठनों ने हिन्दी के उत्थान में अपना अविस्मरणीय योगदान दिया है, जिनमें ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, थियो सोफिकल सोसायटी, प्रार्थना समाज, सनातन धर्म सभा तथा रामकृष्ण मिशन आदि प्रमुख हैं। उपरोक्त समाज सुधारकों की ऐसी धारणा थी कि राष्ट्रीय स्तर पर संवाद स्थापिक करने के लिए हिन्दी आवश्यक है। इसके साथ ही इन सभी का यह दृढ़ मत था कि हिन्दी बहुसंख्यक जन की भाषा है, एक प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त के लोगों से सिर्फ इसी (हिन्दी) भाषा में विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। नेहरू रिपोर्ट और पन्त समिति का यदि हिन्दी के प्रति लीपापोती का व्यवहार नहीं होता, तो आज हिन्दी की इतनी दयनीय दशा नहीं होती। अन्त में मैं यही कहना चाहूँगा कि 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस के रूप में मनाना तभी सार्थक होगा, जब हिन्दी को राजनीतिक विद्वेष से मुक्त कर राजभाषा बनाने का प्रयास किया जाये तथा सरकारी कार्यालयों में अंग्रेजी के स्थान पर हिन्दी का प्रयोग किया जाये क्योंकि अंग्रेजी पराधीनता की और हिन्दी स्वाधीनता की अमिट निशानी है। स्वाधीनता की अमिट निशानी (हिन्दी) को बचाना हम सबका नैतिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय कर्त्तव्य है।

❑❑

कर्मयोगी कलाम

(विज्ञानरत्न लक्ष्मण प्रसाद, अलीगढ़, मो. 09358626917)

मेरा ऐसा मानना है कि डॉ० ए०पी०जे० अब्दुल कलाम एक तपस्वी होने के साथ-साथ, एक कर्मयोगी भी थे। वे अपनी लगन, कड़ी मेहनत और कार्य-प्रणाली के बल पर असफलताओं को झेलते हुए आगे बढ़ते गए। उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में असाधारण सफलताएँ प्राप्त कीं। उनकी गणना अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिकों में की जाती है। सामान्य आविष्कारक के रूप में, उनके जीवन से मैं बहुत ही ज्यादा प्रभावित हुआ। मैंने उनको अपना आदर्श माना। स्वाभाविक था कि मुझे उनसे मिलने की इच्छा हुई परन्तु इतने व्यस्त एवं बड़े वैज्ञानिक से मिलना आसान काम नहीं था। सौभाग्यवश 2 जनवरी, 2000 को दिल्ली से पूना जाते हुए हवाई जहाज में मुझे डॉ० कलाम से मिलने का एक सुअवसर प्राप्त हुआ। 10-15 मिनट की मुलाकात से मैं उनकी सादगी, सद्भावना, शालीनता, सौम्यता आदि से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका।

उनकी पुस्तकों के अध्ययन से मुझे पता चला कि वे गुणों के भण्डार हैं। अदम्य साहस के साथ-साथ शालीनता एवं सद्भावना के गुण उनमें कूट-कूट कर भरे थे। वे सरस्वती पूजा के साथ विज्ञान के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित थे। उनका स्वभाव कोमल था, वे सबके प्रति सद्भावना रखते थे। सादगी, शालीनता एवं सौम्यता उनके विशेष गुण थे। दूसरों को सम्मान देने के साथ-साथ वे उन्हें अच्छे कार्यों के लिए प्रेरित करते थे। अपनी सफलताओं का श्रेय वे स्वयं न लेकर अपने माता-पिता, गुरुजनों एवं वैज्ञानिक अधिकारियों को देते थे। उनकी सम्मतियों को वे, संस्मरण के रूप में अपने लेखों एवं पुस्तकों में उद्धृत करते थे। वे सभी धर्मों का समान रूप से सम्मान करते थे। बड़े-बूढ़ों का सदैव आदर एवं सम्मान करते थे। जहाँ वे बच्चों से प्यार करते थे, उनका चहुँमुखी विकास देखना चाहते थे, वहीं वे भारत को विकसित राष्ट्र बनाने की संकल्पना रखते थे। कलाम साहब ने अपने आचरण से समाज के सभी वर्गों को प्रभावित किया। इन्हीं विशेष गुणों के कारण वे देश के सर्वोच्च पद पर आसीन हुए।

कलाम साहब ने देश की सुरक्षा से संबंधित लगभग 20 बड़ी-बड़ी परियोजनाओं पर कार्य ही नहीं किया, बल्कि उनका सफल नेतृत्व भी किया था। प्रत्येक परियोजना में नवीनीकरण के प्रयोगों के साथ उन्होंने नयी प्रौद्योगिकियाँ भी विकसित की थीं। इन्हीं विशेष गुणों के कारण उन्होंने वैज्ञानिक समुदाय में उच्चस्थ स्थान बनाया। वास्तव में डॉ० कलाम एक सफल महान वैज्ञानिक के साथ-साथ एक महान नवप्रवकि भी थे। जब मैंने नवीनीकरण एवं नवप्रवर्तक के महत्व पर सोचना आरम्भ किया तो मुझे महसूस हुआ कि हमको प्रत्येक क्षेत्र में नवप्रवर्तन की आवश्यकता है, जो हमारे अनेक जटिल समस्याओं का हल कर सकता है। मैंने सोचा कि क्यों न इसके महत्व का समाज में प्रचार और प्रसार किया जाय, जिससे समाज में नवप्रवर्तन एवं नवीनीकरण के प्रति लोगों में चेतना जाग्रत हो।

इन विचारों को ध्यान में रखते हुए 28 फरवरी, 2000 को 'विज्ञान दिवस' के अवसर पर मैंने प्रत्येक वर्ष 15 अक्टूबर को 'नवप्रवर्तन दिवस' मनाने का विचार किया। इस पर अपने कुछ मित्रों एवं शुभ-चिन्तकों से विचार-विमर्श भी किया। सभी को यह विचार अच्छा लगा और इस कार्य को करने में मुझे पूर्ण रूप से सहयोग देने का आश्वासन भी दिया। इस दिवस को 15 अक्टूबर का चयन किए जाने के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण है। 15 अक्टूबर लब्धप्रतिष्ठित वैज्ञानिक प्रौद्योगिकविद् डॉ० कलाम साहब का जन्मदिन है। मेरे

विचार में नवप्रवर्तन की चेतना सञ्चरित करने के लिए इससे अधिक महत्वपूर्ण अन्य कोई दिवस हो ही नहीं सकता।

पिछले 15 वर्षों (सन् 2000) से मेरे निर्देशन में हर वर्ष 15 अक्टूबर को 'राष्ट्रीय नवाचार दिवस' विभिन्न ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में आयोजित किया जाता रहा है। इन अवसरों पर जो वैज्ञानिक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं, उनसे समाज में वैज्ञानिक जागरूकता उत्पन्न हुई है। बच्चों की वैज्ञानिक सोच में वृद्धि हुई है। इसके अलावा इससे न सिर्फ नव-प्रवर्तन आन्दोलन को सही दिशा मिली, वरन् लाखों बच्चों व किशोरों, युवा छात्रों के मस्तिष्क को तेजस्वी बनाने में सहायता भी मिली है। प्रत्येक नवप्रवर्तन दिवस के अवसर पर आरम्भ के 5/6 सालों से एक सुन्दर स्मारिका प्रकाशित की गयी, जिसमें नवप्रवर्तन से सम्बन्धित अनेक लेख एवं नवप्रवर्तकों के सफल कार्यों के विषय में सूचना प्रकाशित की जाती थी। साथ ही वैज्ञानिकों और देश के महान नेताओं के सन्देश भी छापे जाते थे। उसके उपरान्त देश की सबसे प्राचीन "विज्ञान पत्रिका" प्रत्येक वर्ष अक्टूबर माह का अंक 'नवाचार विशेषांक' के रूप में सन् 2007 से लगातार प्रकाशित कर रही है। मेरे अनुरोध पर इस वर्ष 2015 का 'विज्ञान पत्रिका' का अक्टूबर माह का अंक पूर्ण रूप से डॉ० कलाम को समर्पित किया जा रहा है।

लगभग 10 वर्ष पूर्व मेरे द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित पुस्तक 'कर्मयोगी कलाम' में 'राष्ट्रपति कलाम के कुछ अनूठे कार्य एवं विचार' से संबंधित लेख के अंत में डॉ० कलाम को एक कर्मयोगी एवं स्वप्नदृष्टा के रूप में मैंने अपने भाव इस प्रकार प्रदर्शित किये थे।

'वास्तव में डॉ० कलाम, महात्मा गाँधी की भाँति ही कर्मयोगी एवं स्वप्नदृष्टा हैं। गाँधी जी स्वतंत्र भारत के स्वप्नदृष्टा हैं। जबकि डॉ० कलाम स्वावलंबी, स्वयं समर्थ विकसित भारत के स्वप्नदृष्टा हैं। उनकी सादगी, शालीनता, अर्थशुचिता, नैतिकता, आध्यात्मिकता एवं स्वदेश के प्रति गहनतम प्रेम और इन सबके ऊपर ईश्वर के प्रति अटूट आस्था, उनको भारत के एक और गाँधी के रूप में स्थापित करेगी। महात्मा गाँधी के सभी मौलिक गुण उनमें विद्यमान हैं।

नियंत्रित कर्तव्यशील कार्यकलापों के लिए 'गीता' गाँधी जी की मार्गदर्शिका शक्ति थी, इसी प्रकार चमत्कारी उपलब्धियों के लिए 'गीता' डॉ० कलाम की ऊर्जा की सतत् शीर्ष प्रवाहमयी निर्झरिणी है। जैसे गाँधी जी अपने महान कार्यों से महात्मा बन गए थे, वैसे ही 'गीता' और 'कुरान' की सद्शिक्षाओं के अनुरूप अपने कृतित्व एवं निष्ठा के फलस्वरूप कुछ काल के बाद डॉ० कलाम भी संत कलाम के रूप में जाने जायेंगे।

ऐसे अनूठे राष्ट्रपति के स्वप्नों को साकार करने के लिए प्रत्येक भारतीय नागरिक का कर्त्तव्य बनता है कि वे अपना कार्य अपने-अपने कार्यक्षेत्रों में पूर्ण ईमानदारी, मेहनत, निष्ठा, समर्पण-भावना से करें और गलत कामों को न करें और न बढ़ावा दें। तभी यह देश 2020 तक एक विकसित एवं बलशाली राष्ट्र बन सकता है। हम सब उनके जीवन से बहुत कुछ शिक्षा एवं प्रेरणा लेकर देश एवं समाज को आगे बढ़ाने में योगदान कर सकते हैं, जो समय की पुकार है।"

कलाम साहब के जाने के बाद लोगों ने उन्हें अनेक सम्मानित उपाधि एवं शीर्षक जैसे राष्ट्ररत्न, कर्मयोगी, युगदृष्टा, राष्ट्र नायक, राष्ट्रविभूति, राष्ट्र-गौरव राष्ट्रऋषि, भारतीय ऋषि-परम्परा के वाहक, देश के प्रेरणास्रोत, संत सरीके वैज्ञानिक, सबके प्यारे कलाम, चमत्कारी प्रतिभा आदि रूपों में पहचाना और उसी के अनुसार अपनी-अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की और सम्पूर्ण राष्ट्र ऐसे कर्मयोगी को भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलि देना कैसे भूल सकता है।

❑❑

अध्यात्मवाद

(कृष्ण चन्द्र मार्ग, पंचकूला, मो- 09501467456)

आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, इन दोनों का आपस में सम्बन्ध क्या है- इस विषय का नाम अध्यात्मवाद है। आत्मा और परमात्मा दोनों ही भौतिक पदार्थ नहीं हैं। इन्हें आँख से देखा नहीं जा सकता, कान से सुना नहीं जा सकता, नाक से सूंघा नहीं जा सकता, जिह्वा से चखा नहीं जा सकता, त्वचा से छुआ नहीं जा सकता।

परमात्मा एक है, अनेक नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि उसी एक ईश्वर के नाम हैं। (एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। ऋग्वेद- 1-164-46) अर्थात् एक ही परमात्मा शक्ति को विद्वान् लोग अनेक नामों से पुकारते हैं। संसार में जीवधारी प्राणी अनन्त हैं, इसलिए आत्माएं भी अनन्त हैं। न्यायदर्शन के अनुसार ज्ञान, प्रयत्न, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख- ये छः गुण जिसमें हैं, उसमें आत्मा है। ज्ञान और प्रयत्न आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं, बाकी चार गुण इसमें शरीर के मेल से आते हैं। आत्मा की उपस्थिति के कारण ही यह शरीर प्रकाशित है, नहीं तो मुर्दा अप्रकाशित और अपवित्र है। यह संसार भी परमात्मा की विद्यमानता के कारण ही प्रकाशित है।

आत्मा और परमात्मा- दोनों ही अजन्मा व अनन्त हैं। ये न कभी पैदा होते हैं और न ही कभी मरते हैं, ये सदा रहते हैं। इनका बनाने वाला कोई नहीं है। आत्मा परमात्मा का अंश नहीं है। हर आत्मा एक अलग और स्वतन्त्र सत्ता है।

आत्मा अणु है, बेहद छोटी है। परमात्मा आकाश की तरह सर्वव्यापक है। आत्मा का ज्ञान सीमित है, थोड़ा है। परमात्मा सर्वज्ञ है, वह सब कुछ जानता है। जो कुछ हो चुका है और हो रहा है, सब कुछ उसके संज्ञान में है। अन्तर्यामी होने से वह सभी के मनों में क्या है, यह भी जानता है। आत्मा की शक्ति सीमित है, थोड़ी है, परन्तु परमात्मा सर्वशक्तिमान है। सृष्टि को बनाना, चलाना, प्रलय करना- आदि अपने सभी काम करने में वह समर्थ है। पीर, पैगेम्बर, अवतार आदि नाम से कोई एजेण्ट या बिचौलिए उसने नहीं रखे हैं। ईश्वर सभी काम अपने अन्दर से करता है क्योंकि उसके बाहर कुछ भी नहीं है। ईश्वर जो भी करता है, वह हाथ-पैर आदि से नहीं करता क्योंकि उसके ये अंग हैं ही नहीं। वह सब कुछ इच्छा मात्र से करता है।

ईश्वर आनन्दस्वरूप है। वह सदा एक रस आनन्द में रहता है। वह किसी से राग-द्वेष नहीं करता। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से परे हैं। ईश्वर की उपासना करने से अर्थात् उसके समीप जाने से आनन्द प्राप्त होता है। जैसे सर्दी में आग के पास जाने से सुख मिलता है। ईश्वर निराकार है। उसे शुद्ध मन से जाना जा सकता है। जैसे हम सुख-दुःख में अनुभव करते हैं।

यह आत्मा जब मनुष्य शरीर में होती है, तब वह कार्य करने में स्वतन्त्र रहती है। उस समय किए कार्यों के अनुसार ही उसे परमात्मा सुख, दुःख तथा अगला जन्म देता है। दूसरी योनियाँ या तो किसी दूसरे के आदेश पर चलती हैं या स्वभाव से काम करती हैं। उनमें विचार शक्ति नहीं होती। इसलिए उन योनियों में की गई क्रियाओं का उन्हें अच्छा या बुरा फल नहीं मिलता। ये केवल भोग योनियाँ हैं, जो पहले किए कर्मों का फल भोग रही हैं। मनुष्य योनि में कर्म और भोग दोनों का मिश्रण है। मनुष्य स्वतन्त्र रूप से कर्म भी करता है और कर्मफल भी भोगता है।

मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं हूँ। शरीर मेरा संसार में व्यवहार करने का साधन है। कर्ता और भोक्ता आत्मा है। सुख-दुःख आत्मा को होता है।

जीवात्मा न स्त्रीलिंग है, न पुल्लिंग है और न ही नपुंसक है। यह जैसा-जैसा शरीर पाता है, वैसा-वैसा

कहा जाता है। (श्वेताश्वतर उपनिषद)

ईश्वर की पूजा ऐसे नहीं की जाती, जैसे मनुष्यों की पूजा अर्थात् सेवा-सत्कार किया जाता है। ईश्वर की आज्ञा का पालन अर्थात् सत्य और न्याय का आचरण ही ईश्वर की पूजा है।

कठोपनिषद में मनुष्य शरीर की तुलना घोड़ा गाड़ी से की गई है। इसमें आत्मा गाड़ी का मालिक अर्थात् सवार है। बुद्धि सारथी अर्थात् कोचवान है, मन लगाम है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं। इन्द्रियों के विषय वे मार्ग हैं, जिन पर इन्द्रियाँ रूपी घोड़े दौड़ते हैं। आत्मा रूपी सवार अपने लक्ष्य तक तभी पहुँचेगा, जब बुद्धि रूपी सारथी मन रूपी लगाम को अपने वश में रख कर इन्द्रियाँ रूपी घोड़ों को सन्मार्ग पर चलाएगा।

उपनिषद में घोड़ागाड़ी को रथ कहा गया है और रथ पर सवार को रथी। मनुष्य शरीर में आत्मा रथी है। जब आत्मा निकल जाती है, तब शरीर अरथी रह जाता है।

परमात्मा हम सबका माता, पिता और मित्र है। वह सब प्राणियों का भला चाहता है। जब मनुष्य कोई अच्छा काम करने लगता है, तो उसे आनन्द, उत्साह, निर्भयता महसूस होती है। यह परमात्मा की तरफ से होता है। और जब वह कोई बुरा काम करने लगता है, तब उसे भय, शंका, लज्जा महसूस होती है। वह भी परमात्मा की तरफ से ही होता है।

❑❑

पृष्ठ 9 का शेष

दीवारों पर सम्पूर्ण रामायण की झाँकियाँ हैं। वे लोग रामलीला भी करते हैं। उनके नाम भी राम, कृष्ण आदि हैं, हिन्दुओं की तरह त्यौहार मनाते हैं। केवल खतना ही इस्लामियत से सम्बन्ध रखता है।

बाली के लोग पक्के हिन्दू हैं। यहाँ का राजा अब तक हिन्दू है। वेद, रामायण, महाभारत, शास्त्र, उपनिषद आदि से ये लोग पूर्णतः परिचित हैं। यहाँ सत्तर श्लोकी गीता मिलती है। शेष गीता को ये प्रक्षिप्त मानते हैं। वाल्मीकि-रामायण में उत्तरकाण्ड नहीं है। महाभारत के 8 पर्व मिलते हैं। वेद मंत्र के आरम्भ में ये 'ओं' शब्द का उच्चारण करते हैं। इनकी मलाई भाषा संस्कृत मिश्रित है। ये लोग शालिवाहन का सम्वत् प्रयोग करते हैं।"

इस समानता का कारण था भारतीय विद्वानों द्वारा प्राप्त सांस्कृतिक विजय। दुर्भाग्य से जब से भारत के कथित विद्वान् पण्डितों को जहाज में चढ़ना पाप प्रतीत होने लगा, तब से संसार में वैदिक (हिन्दू) धर्म सिकुड़ने लगा और इस्लाम व इसाइयत का प्रसार होने लगा। सब कुछ जानते-मानते हुए भी हिन्दुत्व-विद्वेष के कारण अन्तर्राष्ट्रवादी नेहरू यह लिखने से नहीं रुके - "वहाँ (विदेशों में) जिन राज्यों का उदय हुआ उनके शासकों के नाम विशुद्ध भारतीय और संस्कृत नाम हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे विशुद्ध भारतीय थे, पर इसका अर्थ यह अवश्य है कि उनका भारतीयकरण किया गया था।" (भारत की खोज, पृ० 58) सोचिये, क्या यह सुमेर (इरान) के विषय में नहीं कहा जा सकता?

❑❑

एक निवेदन

प्रिय पाठकवृन्द! सितम्बर 2015 (दयानन्द सन्देश) के अंक में सत्यार्थ प्रकाश सम्बन्धी लेख छपा। स्मृति दोष के कारण उसमें एक भूल हो गई थी। कृपया पाठक क्षमा करें। स्वामी श्रद्धानन्द जी की हत्या के बाद गांधी जी से पत्र व्यवहार पं. देवेश्वर सिद्धांतालंकार ने किया था और उसका आधार बनी थी पं. अयाध्या प्रसाद बी.ए. द्वारा लिखित पुस्तक "इस्लाम कैसे फैला"। सम्वत् 1985 (1928 ई.) में इसके दूसरे संस्करण में वह पत्र व्यवहार भी छपा है। 'कालजयी सन्त के ग्रन्थ पर प्रहार' लेख लिखते समय मेरी यह पुस्तक आचार्य श्री संस्कृतानन्द जी (गुजरात) के पास गई हुई थी। अतः कई वर्ष पूर्व पढ़ी पुस्तक व लेखक का ही नाम स्मरण रहने से पत्र व्यवहार कर्ता पं. अयोध्या प्रसाद बी.ए. लिखा गया था।

संसार को किसने धारण किया है?

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून)

सभी आँखों वाले प्राणी सूर्य, चन्द्र व पृथिवी से युक्त नाना रंगों वाले संसार को देखते हैं, परन्तु उन्हें यह पता नहीं चलता कि यह संसार किसने व क्यों बनाया और कौन इसका धारण व पालन कर रहा है? जिस प्रकार प्राणियों के शरीर का धारण उसमें निहित जीवात्मा के द्वारा होता है, इसी प्रकार से इस संसार रूपी शरीर का धारण भी किसी चेतन सत्ता के द्वारा ही होना संभव है। जिस प्रकार से बिना आत्मा के शरीर मृतक के समान होता है, इसी प्रकार से बिना सत्य, चित्त व आनन्दस्वरूप ईश्वर के यह संसार भी बन व चल नहीं सकता। यदि संसार चल रहा है, तो कोई सत्ता अवश्य है, जो इसे चला रही है अन्यथा यह मृतक शरीर की भाँति निष्क्रिय निर्जीव होता। मनुष्य के शरीर को जीवात्मा धारण किये हुए होता है। जीवात्मा में ज्ञान व क्रिया का स्वाभाविक गुण होता है, जिससे आत्मा के द्वारा शरीर धारण किया जाता है। ज्ञान दो प्रकार का होता है, एक सत्य व दूसरा असत्य। सत्य यथार्थ गुणों को कहते हैं और असत्य अयथार्थ, अस्तित्वहीन व सत्य के विपरीत जो वास्तविक नहीं है अपितु कृत्रिम गुण हों, उनको कहते हैं। उदाहरण के लिए हम अपने शरीर को लेते हैं। यह भौतिक द्रव्यों से बना हुआ है, जिसमें दो आँखें, दो नासिक छिद्रों से युक्त नासिका, दो कान, वाणी बोलने के यन्त्र व दाँतों से युक्त मुख, त्वचा सहित 5 ज्ञान व 5 कर्म-इन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि है। यह सत्य है, इसके विपरीत यह कहना कि शरीर में आँख, नाक, कान आदि हैं ही नहीं, यह असत्य है। यही वास्तविक ज्ञान है। ज्ञान में अपनी स्वाभाविक शक्ति भी निहित होती है। ज्ञानरहित जड़ पदार्थों को ज्ञानयुक्त सत्ता नियंत्रित करती है और ज्ञानयुक्त जीवात्मा व परमात्मा ज्ञान के अनुसार शक्तिवान व क्रियाशील है।

संसार को कौन धारण कर रहा है? इसका उत्तर देने से पूर्व आरम्भ में किए गये प्रश्न कि संसार को किसने व क्यों बनाया है, इसके संक्षिप्त उत्तर पर विचार करते हैं। इस दृश्यमान संसार को उस सत्ता ने बनाया है, जो कि संसार को बना सकती है। कौन सी सत्ता बना सकती है? इसका उत्तर है- जो सत्य, चित्त, दुःखों से सर्वथारहित पूर्ण आनन्दयुक्त, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वातिसूक्ष्म, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान आदि गुणों से युक्त हो, उसी सत्ता से यह संसार बन सकता है। जड़ पदार्थ न तो स्वयं कुछ बुद्धिपूर्वक ज्ञानयुक्त रचना बन सकते हैं, न ही परस्पर मिलकर बना सकते हैं और न ही उन पदार्थों का बिना बने कोई महत्व होता है। किसी पदार्थ की रचना किसी ज्ञानयुक्त सत्ता से ही हुआ करती है और यह भी नियम है कि ज्ञानयुक्त सत्ता कोई भी कार्य आवश्य ही किसी प्रयोजन से करती है, बिना प्रयोजन के कोई कार्य नहीं करती। जीवात्मा को ही लें, यह ज्ञानयुक्त व कर्म करने वाली सत्ता है। यह जो भी कार्य व क्रिया मनुष्य के रूप में करती व कराती है, उसका प्रयोजन अवश्य होता है। निष्प्रयोजन यह कोई कार्य कदापि नहीं करती। अतः ईश्वर जिससे यह संसार बना, उसका चेतन पदार्थ होना आवश्यक है। सत्ता होने से वह सत्य है। जिनकी सत्ता नहीं होती। वह असत्य पदार्थ होते हैं। संसार की विशालता को देखकर और इसके बनाने वाला आँखों से दिखाई न देने के कारण वह निराकार व सर्वव्यापक है। सारा संसार एक सुनियोजित व ज्ञानयुक्त सत्ता है। जिससे ईश्वर का सर्वज्ञ होना सिद्ध होता है। इसी प्रकार से दुःखों से युक्त व्यक्ति की कार्य करने में रुचि नहीं होती। कोई भी कार्य करने के लिए स्वस्थ व सुखी होना आवश्यक है, इसी प्रकार से ईश्वर यह रचना बनाकर चला रहा है, तो इससे उसका सर्वानन्दयुक्त होना सिद्ध होता है। दिखाई न देने से वह सर्वातिसूक्ष्म तत्व है और प्रकृति के सत्व, रज व तम कणों से जो कि अत्यन्त

सूक्ष्म है, उनसे परमाणुओं, अणुओं का निर्माण कर ईश्वर ने यह सृष्टि बनाई है, इससे भी सर्वातिसूक्ष्म सिद्ध होता है। इसी प्रकार सर्वान्तर्यामी एवं सर्वशक्तिमान विशेषण भी ईश्वर में सिद्ध हाते हैं। ईश्वर का ऐसा ही स्वरूप ईश्वरीय ज्ञान वेदों में कहा गया है, जो सृष्टि की उत्पत्ति के समय ईश्वर ने चार ऋषियों की आत्माओं में प्रेरणा द्वारा दिया था। ईश्वर के इस स्वरूप के विपरीत ईश्वर का चित्रण, वर्णन व कथन असत्य व निराधार है। वह लोगों की अज्ञानता व वैदिक ज्ञान से अनभिज्ञता और निजी स्वार्थों के कारण होता है। वेदों मे प्रमाणों के अतिरिक्त हमारे ऋषि-मुकुनि जिन्हें हमें अध्यात्मविज्ञान के वैज्ञानिक कह सकते हैं, उन्होंने योगपद्धति से उपासना करके ईश्वर के स्वरूप का अपनी हृदय-गुहा में साक्षात्कार कर इसे सत्य पाया और दर्शनों, स्मृतियों व उपनिषदों में अपने ज्ञान व अनुभव पर आधारित ईश्वर के सत्य स्वरूप का वर्णन किया। अतः ईश्वर का अस्तित्व स्वयंसिद्ध है। यह संसार ईश्वर के द्वारा सत्व, रज व तम गुणों वाली जड़ प्रकृति (ज्ञान रहित) से पूर्व कल्पों के अनुसार जीवों को उनके पाप व पुण्य कर्मों के फलों को देने के लिये बनाया गया है, यह सिद्ध होता है। यह ऐसा उत्तर है जिससे विषय की समस्त शंकाओं व प्रश्नों का समाधान हो जाता है और यह वेदों से भी पुष्ट है।

हमारे लेख का विषय है कि संसार को किसने धारण किया हुआ है। इसके दो उत्तर हैं- पहला तो यह कि सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर ने व दूसरा सत्य नियमों ने। मनुष्यों के सत्य कर्मों व आचरण जिसे धर्म की संज्ञा दी गई है, उससे यह संसार पल्लवित व पुष्पित होता है और मिथ्याचरणों व अन्धविश्वास आदि से यह अव्यवस्थित होता है, जिसके लिए सभी देशों की सरकारों ने दण्ड का प्रावधान किया हुआ है। यह सिद्धान्त ईश्वर के पाप-पुण्य के अनुसार पुरस्कार व दण्ड के विधान जिसे कर्म-फल व्यवस्था कहते हैं, का अनुकरण है। ईश्वर ने इस संसार को अपने सत्य नियमों में आरूढ़ होकर धारण किया हुआ है। इसका अर्थ कि सृष्टि को बनाने व चलाने में जिन सत्य नियमों की आवश्यकता है, ईश्वर उसका पूरा-पूरा पालन करता है। यदि ऐसा न हो, तो यह संसार न तो बन ही सकता था और न चल ही सकता था। वैज्ञानिक भौतिक पदार्थों का अध्ययन कर जिन नियमों को ईश्वर प्रदत्त बुद्धि व ज्ञान से जान पाते हैं, वह नियम ईश्वर के बनाये नियम हैं और उन्हें ही सत्य नियम कहा जाता है। उन व वैसे ही अन्य सत्य नियमों से संसार का धारण ईश्वर करता है। ईश्वर मनुष्यों को अपने सत्य नियमों से उत्पन्न करता है और उनसे अपेक्षा करता है कि वह भी सत्य का पालन व धारण करें। यही सच्चा मानव व वैदिक धर्म है। जो मनुष्य इनका पालन करता है, वह ईश्वर की व्यवस्था से सुखों व दुःखों से निवृत रहता है। ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के यथार्थ स्वरूप को जानकर व ईश्वर के बनाये सत्य नियमों के अनुसार प्राकृतिक पदार्थों का उपयोग करना तथा किसी पदार्थ का किंचित दुरूपयोग न करना ही मनुष्यों का कर्तव्य है। जो मनुष्य जीवन में सत्य विद्याओं व वेदों का अध्ययन नहीं करते व जिनका आचरण व व्यवहार सत्य नियमों के विपरीत होता है, वह संसार व ईश्वर के सत्य नियमों में बाधक बनते हैं, जिससे ईश्वर उनको दुःख के रूप में दण्ड देता है। यह प्रायः मानसिक क्लेश, शारीरिक दुर्बलता व रोग आदि के रूप में होता है। वेदों व वैदिक विचारधारा से अनभिज्ञ लोगों को अपने दुःखों का कारण समझ में नहीं आता और वह इनका समाधान आर्थिक समृद्धि आदि में खोजते हैं, जिससे आंशिक लाभ ही होता है। आर्थिक समृद्धि व संपन्नता से किसी मनुष्य के आध्यात्मिक, आधिदैविक व आधिभौतिक दुःखों की पूर्ण निवृत्ति अद्यावधि देखने में नहीं आई। इससे जीवन में एक प्रकार का द्वन्द्व बनता है, जिसमें उलझ कर वेद ज्ञान से अनभिज्ञ सत्य आचरण न करने वाले धनी व निर्धन व्यक्ति दुःखों व क्लेशों से आबद्ध रहकर कालान्तर में अभिनिवेश क्लेश मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। अतः वेदाध्ययन करना, सृष्टि में कार्यरत नियमों को जानना, ईश्वर-जीव-प्रकृति के यथार्थ सवरूप को जानकर ईश्वर

शेष पृष्ठ 20 पर

वेदों में विज्ञान एवं प्राचीन ऋषियों के वैज्ञानिक होने पर संशय क्यों?

(डॉ० विवेक आर्य)

रक्षमंत्री मनोहर परिकर जी ने भारत के वैज्ञानिकों को सम्बोधित करते हुए कहा कि प्राचीन भारत के साधु संत "शायद" महान वैज्ञानिक थे। वैसे तो रक्षा मंत्री का कथन स्वागत योग्य है। परन्तु रक्षा मंत्री द्वारा "शायद" शब्द के सम्बोधन से उन्हें इस विषय पर संशय है, ऐसा प्रतीत होता है। वेदों में बन्दुक को भूशुण्डी और मिसाइल को ब्रह्मास्त्र कहा गया है। संस्कृत भाषा में किसी भी वस्तु के लिए प्रामाणिक शब्द होना यही दर्शाता है कि उस वस्तु का प्राचीन काल में अस्तित्व था। यह तर्क प्राचीन भारत में वैदिक विज्ञान के उन्नत होने एवं उसकी उन्नति करने वाले वैज्ञानिकों का होना भी सिद्ध करता है। आधुनिक भारत में महर्षि दयानन्द द्वारा सर्वप्रथम वेदों में मानव कल्याण के लिए विज्ञान बीजरूप में वर्णित है, का उद्घोष किया गया था। वेदों में विज्ञान के अनेक प्रारूपों में से एक खगोल विद्या को इस लेख के माध्यम से जानने का प्रयास करेंगे। विश्व के इतिहास में सूर्य, पृथ्वी, चन्द्रमा आदि को लेकर अनेक मतमतांतरों में अनेक भ्रांतियाँ प्रसिद्ध हैं। जो न केवल विज्ञान विरुद्ध हैं, अपितु कल्पित भी हैं। जैसे पृथ्वी चपटी है, सूर्य का पृथ्वी के चारों ओर घूमना, सूरज का कीचड़ में डूब जाना, चाँद के दो टुकड़े होना, पृथ्वी का शेषनाग के सर पर अथवा बैल के सींग पर अटका होना आदि। इन मान्यताओं की समीक्षा के स्थान पर वेद में वर्णित खगोलविद्या को लिखना इस लेख का मुख्य उद्देश्य रहेगा।

वेदों में विश्व को तीन भागों में विभाजित किया गया है- पृथ्वी, अंतरिक्ष (आकाश) एवं द्युलोक। आकाश का सम्बन्ध बादल, विद्युत और वायु से है, द्युलोक का सम्बन्ध सूर्य, चन्द्रमा, गृह और तारों से है।

पृथ्वी गोल है।

ऋग्वेद 1/33/8 में पृथ्वी को आलंकारिक भाषा में गोल बताया गया है। इस मंत्र में सूर्य पृथ्वी को चारों ओर से अपनी किरणों द्वारा घेरकर सुख का संपादन (जीवन प्रदान) करने वाला बताया गया है। पृथ्वी अगर गोल होगी, तभी उस पर चारों ओर से सूर्य प्रकाश डाल सकता है। अब कुछ लोग यह शंका कर सकते हैं कि पृथ्वी अगर चतुर्भुज होगी, तो भी तो उसे चारों दिशा से सूर्य प्रकाशित कर सकता है।

इस शंका का समाधान यजुर्वेद 23/61-62 मंत्र में वेद पृथ्वी को अलंकारिक भाषा में गोल सिद्ध करते हैं।

यजुर्वेद 23/61 में लिखा है कि इस पृथ्वी का अंत क्या है? इस भुवन का मध्य क्या है? यजुर्वेद 23/62 में इसका उत्तर इस प्रकार से लिखा है कि यह यज्ञवेदी ही पृथ्वी की अंतिम सीमा है। यह यज्ञ ही भुवन का मध्य है। अर्थात् जहाँ खड़े हो, वही पृथ्वी का अंत है तथा यही स्थान भुवन का मध्य है। किसी भी गोल पदार्थ का प्रत्येक बिंदु (स्थान) ही उसका अंत होता है और वही उसका मध्य होता है। पृथ्वी ओर भुवन दोनों गोल हैं।

ऋग्वेद 10/22/14 मंत्र में भी पृथ्वी को बिना हाथ-पैर वाला कहा गया है। बिना हाथ पैर का अलंकारिक अर्थ गोल ही बनता है। इसी प्रकार से ऋग्वेद 1/185/2 में भी अंतरिक्ष और पृथ्वी को बिना पैर वाला कहा गया है।

पृथ्वी के भ्रमण का प्रमाण

पृथ्वी को गोल सिद्ध करने के पश्चात् प्रश्न यह है कि पृथ्वी स्थिर है अथवा गतिवान है। वेद पृथ्वी को सदा गतिवान मानते हैं।

ऋग्वेद 1/185/1 मंत्र में प्रश्न-उत्तर शैली में प्रश्न पूछा गया है कि पृथ्वी और द्युलोक में कौन आगे हैं और कौन पीछे हैं अथवा कौन ऊपर है और कौन नीचे है? उत्तर में कहा गया कि जैसे दिन के पश्चात् रात्रि

और रात्रि के पश्चात् दिन आता ही रहता है, जैसे रथ का चक्र ऊपर-नीचे होता रहता है, वैसे ही द्यु और पृथ्वी एक दूसरे के ऊपर-नीचे हो रहे हैं अर्थात् पृथ्वी सदा गतिमान है।

अथर्ववेद 12/1/52 में लिखा है वार्षिक गति से (वर्ष भर) पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्र काटकर लौट आती है।

पृथ्वी आदि गृह सूर्य के आकर्षण से बंधे हुए हैं।

ऋग्वेद 10/149/1 मंत्र का देवता सविता है। यहाँ पर ईश्वर द्वारा पृथ्वी आदि ग्रहों को निराधार आकाश में आकर्षण से बांधना लिखा है।

ऋग्वेद 1/35/2 मंत्र में ईश्वर द्वारा अपनी आकर्षण शक्ति से सूर्य, पृथ्वी आदि लोकों को धारण करना लिखा है।

ऋग्वेद 1/35/9 मंत्र में सूर्य को द्युलोक और पृथ्वी को अपने आकर्षण से स्थित रखने वाला बताया गया है।

ऋग्वेद 12164/13 में सूर्य को एक चक्र के मध्य में आधार रूप में बताया गया है एवं पृथ्वी आदि को उस चक्र के चारों ओर स्थित बताया गया है। वह चक्र स्वयं घूम रहा है एवं बहुत भार वाला अर्थात् जिसके ऊपर सम्पूर्ण भुवन स्थित है, सनातन अर्थात् कभी न टूटने वाला बताया गया है।

चन्द्रमा में प्रकाश का स्रोत्र

ऋग्वेद 1/84/15 में सूर्य द्वारा पृथ्वी और चन्द्रमा को अपने प्रकाश से प्रकाशित करने वाला बताया गया है।

दिन और रात कैसे होती है

ऋग्वेद 1/35/7 में प्रश्नोत्तर शैली में प्रश्न आया है कि यह सूर्य रात्रि में किधर चला जाता है तो उत्तर मिलता है कि पृथ्वी के पृष्ठ भाग में चला जाता है। दिन और रात्रि के होने का यही कारण है।

ऋग्वेद 10/190/2 में लिखा है ईश्वर सूर्य द्वारा दिन और रात को बनाता है।

अथर्ववेद 10/8/23 में लिखा है नित्य ईश्वर के समान दिन और रात्रि नित्य उत्पन्न होते हैं।

वेद में काल विभाग

अथर्ववेद 9/9/12 में वर्ष को बारह महीनों वाला कहा गया है।

अथर्ववेद 10/8/4 में लिखा है ईश्वर द्वारा प्रयोजन के लिए एक वर्ष को बारह मास, ऋतुओं, और दिनों में विभाजित किया गया है।

अथर्ववेद 12/1/36 में वर्ष को 6 ऋतुओं में विभाजित किया गया है।

इस प्रकार से वेदों के अनेक मन्त्रों में खगोल विज्ञान के दर्शन होते हैं। वेदों में विज्ञान विषय पर शोध करने की आवश्यकता है।

(नोट- अनेक वैदिक मन्त्रों का भाष्य अनेक विद्वानों ने अपनी अपनी शैली में किया है, जिस पर विरोधाभास अथवा असहमति की स्थिति में बृहत्तर चिंतन करने की आवश्यकता है।)

❑❑

पृष्ठ 18 का शेष

स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हुए सत्य नियमों के आधार पर धनार्जित कर जीवन व्यतीत करना ही मनुष्य का कर्तव्य व धर्म है एवं सृष्टि में कार्यरत सत्य नियमों का पोषक है।

यह संसार सत्य नियमों में आबद्ध होकर बना व चल रहा है। हमें भी अपने जीवन को सत्य नियमों में आबद्ध रखकर जीवन जीना है। सत्य नियमों का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करना ही अभ्युदय व निःश्रेयस का आधार है। इसके विपरीत दुःख व अवनति का मार्ग है। आइये, अपने जीवन से असत्य, अनीति, अज्ञान, अन्याय, दुराचार, निकम्मापन व भ्रष्टाचार आदि को सर्वथा दूर कर अपने प्रत्येक कर्म को सत्य पर आश्रित व अवलम्बित करके सत्यस्वरूप ईश्वर के आशीर्वाद के अधिकारी बनें।

❑❑

इतिहास प्रदूषण का अवलोकन

(भावेश मेरजा, गुजरात, मोबाईल -0987952847)

पिछले कई वर्षों से आर्यसमाज के प्रसिद्ध लेखक प्राध्यापक श्री राजेन्द्र जिज्ञासु जी परोपकारी आदि में प्रकाशित अपने लेखों में एवं अपनी पुस्तकों में आर्यसमाज के अन्य प्रसिद्ध विद्वान् लेखक डॉ० भवानीलाल भारतीय जी के मन्तव्यों एवं उनके 'नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती' जैसे ग्रन्थों के कई विवरणों को लेकर सतत आलोचना करते आ रहे हैं। इसी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप जिज्ञासु जी ने अपना एक 160 पृष्ठीय 'इतिहास 'प्रदूषक' नामक ग्रन्थ लिखकर अभी कुछ ही मास पूर्व 'पण्डित लेखराम वैदिक मिशन' अकोला (महाराष्ट्र) में प्रकाशित किया है।

मैं जिज्ञासु जी के लेखों तथा पुस्तकों का नियमित पाठक हूँ। मैंने उनके इस 'इतिहास प्रदूषण' नामक नए ग्रन्थ को प्राप्त कर दो बार आद्योपान्त पढ़ा। पढ़कर मुझे लगा कि आर्यसमाज के व्यापक हित की दृष्टि से इसकी संक्षिप्त समालोचना प्रकाशित करनी चाहिए। अतः मैंने जिज्ञासु जी के इस ग्रन्थ के बारे में अपना निम्नलिखित अभिप्राय आर्य पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशनार्थ भेजा और 'आर्य सन्देश' ने इसे 13 जुलाई 2015 के अंक में प्रकाशित किया।

'इतिहास प्रदूषण' के सम्बन्ध में मेरा अभिप्राय

इस पुस्तक में अनुभवी लेखक ने आर्यसमाज के कई लेखकों (प्रमुख रूप से आर्यसमाज के अग्रिम पंक्ति के लेखक भारतीय जी) की उन बातों की आलोचना की है, जो उनकी दृष्टि में इतिहास विरुद्ध व अनुचित हैं।

आर्यजगत् लेखक की 'तड़प-झड़प' वाली शैली से सुपरिचित है। यह पुस्तक भी उसी शैली में लिखी गई है। लेखक वयोवृद्ध हैं। जीवन के इस पड़ाव में अपनी इस स्वाभाविक शैली का त्याग करना अब सम्भवतः उनके लिए भी दुष्कर होगा। अन्यथा अपने ही संगठन के समानधर्मी प्रतिष्ठित लेखकों की पुस्तकों में पाई जाने वाली इन अशुद्धियों एवं विसंगतियों की वे शालीन व संयत भाषा में समालोचना करते तो श्रेयस्कर रहता। संगठन की दृष्टि से भी यही अपेक्षित है कि जहाँ तक सम्भव हो, हम अपनी बात प्रीतिपूर्वक प्रस्तुत करें।

लेखक ने पुस्तक लिखने का प्रयोजन आर्यसमाज के क्षेत्र में हो रहे इतिहास के प्रदूषण को रोकना बताया है। यह प्रयोजन निःसन्देह उत्तम व पवित्र है और लेखक की एतद् विषयक चिन्ता भी उचित है। फिर भी एक पाठक के रूप में मुझे लगता है कि कई स्थानों पर लेखक आलोच्य विषय के बहाने किसी व्यक्ति विशेष पर अनावश्यक चोट करने के प्रवेग में बहकर अतिरेक भी कर गए हैं।

जिज्ञासु जी की इस पुस्तक में मुख्य रूप से भारतीय जी के लेखन को ही लक्ष्य बनाया गया है। अतः इसका प्रत्युत्तर लिखने के लिए भारतीय जी ही सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति हैं। मगर मैं नहीं जानता कि वर्तमान में अपनी वृद्धावस्था में वे लेखानादि करने में सक्षम हैं या नहीं।

इतना तो है कि जिज्ञासु जी की यह पुस्तक हमें लेखन व प्रवचनादि कार्यों में अधिक सावधान रहने की, अपनी बात यथासम्भव प्रमाण-पुरस्सर लिखने-कहने की आवश्यकता का बोध कराने वाली है।

तिलमिलाने की अपेक्षा यही उत्तम है कि इस पुस्तक से हम कुछ सीखें और अपने आर्यसमाज रूपी संगठन को उसके महान् प्रवर्त्तक की अपेक्षानुसार प्रखर, ज्ञान-प्रवर्त्तक, सत्याग्रही, प्रगतिशील, उदार व सक्रिय बनाएँ।

लेखक की इस कृति को पढ़कर उसके विषय में अपनी धारणा बनाने में प्रत्येक पाठक पूर्ण स्वतन्त्र है।

विवरणों का पुलिन्दा

जिज्ञासु जी को भारतीय जी की इस बात को

लेकर अत्यन्त पीड़ा है कि उन्होंने पण्डित लेखराम जी के द्वारा संगृहीत महर्षि दयानन्द के जीवनचरित्र को 'विवरणों का पुलिन्दा' लिखा है। इसी एक मुद्दे को जिज्ञासु जी ने अपने लेखों एवं पुस्तकों में न जाने कितनी बार उठाया होगा। उनको ऐसा लगता है कि इन शब्दों से भारतीय जी ने पण्डित लेखराम जी के ग्रन्थ का अवमूल्यन या निन्दा की है। तभी तो वे भारतीय जी पर आक्षेप करते हुए लिखते हैं- "इन्हीं डॉ० भवानीलाल भारतीय जी ने ऋषि जीवन तथा आर्यसमाज के इतिहास को प्रदूषित करने का काम परोपकारिणी सभा में प्रवेश पाकर आरम्भ किया। आपने पं० लेखराम जी लिखित ऋषि जीवन को 'विवरणों का पुलिन्दा' लिखकर टैस्ट केस (Test case) बनाकर आर्यसमाजियों की श्रद्धा व सिद्धान्त निष्ठा को परखा।" ('इतिहास प्रदूषण', पृष्ठ 32)

मगर यह आक्षेप सर्वथा अनुचित है। यथार्थ जानने के लिए हम यहाँ भारतीय जी के 'नवजागरण के पुरोधा - दयानन्द सरस्वती' ग्रन्थ का वह पूरा सन्दर्भ प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसमें उन्होंने 'विवरणों का पुलिन्दा' शब्द का प्रयोग किया है।

'नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती' ग्रन्थ में पण्डित लेखराम जी द्वारा संगृहीत जीवन चरित्र का लेखक भारतीय द्वारा किया गया यथार्थ मूल्यांकन

भारतीय जी ने लिखा है- "नवम्बर 1888 से आर्यपथिक ने जीवनी की आधारभूत सामग्री का संग्रह प्रारम्भ किया। 1892 ई० तक देश के विभिन्न भागों में घूम कर उन्होंने उन सहस्रों व्यक्तियों से सम्पर्क किया, जिन्होंने स्वामीजी को प्रत्यक्ष देखा था, उनके सम्पर्क में आये थे तथा उनके उपदेश श्रवण का अवसर भी प्राप्त किया था। ऐसे व्यक्तियों के वक्तव्यों को उन्होंने सिलसिलेवार लिपिबद्ध किया। इस प्रकार स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में प्रकाशित विभिन्न समाचारों, सूचनाओं तथा विज्ञापनों का भी उन्होंने संग्रह किया।यह निश्चित है कि यदि पं० लेखराम अकाल में ही काल कवलित नहीं हुए होते तो, दयानन्द का एक व्यवस्थित एवं प्रामाणिक जीवन चरित उन्हीं की लेखनी से लिखा जाकर तैयार हो जाता, किन्तु इससे पूर्व कि वे इस कार्य को समाप्त कर लेते, 6 मार्च 1897 ई० को एक आततायी के घातक प्रहार से आहत होकर वे परलोकगामी हुए। यह एक संयोग ही था कि पं० लेखराम जिस समय स्वामी जी के जीवन चरित के लेखन का कार्य कर रहे थे, उसी समय उन पर छुरी का प्रहार हुआ। दयानन्द के विचारों और आदर्शों से अनुप्राणित आर्यपथिक के रक्त से वह पाण्डुलिपि सिञ्चित हो गई, जिसमें वे अपने गुरु और आचार्य के जीवन की कथा लिख रहे थे। पं० लेखराम द्वारा संग्रहीत जीवन चरित अनेक दृष्टिओं से महत्वपूर्ण है। यह एक प्रकार से दयानन्द सरस्वती के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने वाले तथा उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं से सीधा परिचय रखने वाले लोगों के बयानों पर आधारित है। यदि एक ही घटना या स्थिति का वर्णन भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने भिन्न भिन्न प्रकार से किया, तो भी पं० लेखराम ने उन सभी लोगों के वक्तव्यों को एक ही स्थान पर संगृहीत कर लिया था। शायद वे स्वतन्त्र रूप से कोई निष्कर्ष भी निकालते अथवा उन लोगों द्वारा वर्णित बयानों का कोई समन्वित रूप भी प्रस्तुत करते, परन्तु कार्य पूरा होने से पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। अतः पाठक को दयान्द का यह जीवन चरित प्रत्यक्षदर्शियों के द्वारा बताये गये विवरणों का एक पुलिंदा सा प्रतीत होता है। पं० लेखराम ने स्वामीजी के पृथक्-पृथक् स्थानों पृथक्-पृथक् कालों में जाने की घटनाओं को कालक्रमानुसार वर्णित न कर स्थान क्रम से एक स्थान पर ही रख दिया है। निश्चय ही यह सामग्री संग्रह का एक प्रयास मात्र था, साहित्यिक शैली में लिखी गई जीवनी के तत्त्व तो इसमें नगण्य ही हैं तथापि उपादान सामग्री की दृष्टि से इस ग्रन्थ का महत्त्व निर्विवाद है।"

('नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती' प्रथम संस्करण, वैदिक पुस्तकालय अजमेर, 1983 ई०, पृ० 28-29)

मुझे तो भारतीय जी द्वारा किए गए उपर्युक्त मूल्यांकन में कुछ भी अनुचित नहीं लगता है। उन्होंने पण्डित लेखराम जी के द्वारा संगृहीत जीवनचरित्र का वास्तविक चित्रण ही किया है।

इसी बात को ठीक से समझने के लिए मैं यहाँ आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् पंडित घासीराम जी (मेरठ) का एतद् विषयक मन्तव्य पाठकों के ध्यान में लाना चाहता हूँ।

पं. लेखराम जी द्वारा संगृहीत :महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' का पं० घासीराम जी के द्वारा किया गया सम्यक् मूल्यांकन

पण्डित घासीराम जी (मेरठ) ने लिखा है- "आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने स्वर्गीय पण्डित लेखराम को ऋषि-जीवन की सामग्री इकट्ठी करने के लिए नियत किया। पण्डित जी ने पाँच वर्षों तक उसके संग्रह करने में अनथक परिश्रम किया और इसमें इन्हें सफलता भी अच्छी हुई। सामग्री संग्रह करने के पश्चात् वह अपने नोटों को क्रमबद्ध करने बैठे परन्तु प्रचार कार्य के कारण उसमें अन्तराय पड़ते रहे और वह अपनी संगृहीत सामग्री के स्वल्प अंश को ही क्रम में रखने का प्रयत्न कर पाये कि 6 मार्च 1896 को एक यवन घातक ने उनका वध कर दिया। न वह सारी सामग्री को ही क्रमबद्ध कर पाये और न उसका पुनर्निरीक्षण ही कर सके। उनके पश्चात् यह काम आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् कार्यकर्त्ता श्री मास्टर आत्माराम अमृतसरी को सौंपा गया। उन्होंने और उनके सहकारियों ने जिस महान् परिश्रम से पण्डित लेखराम जी के छोड़े हुए काम को पूरा किया, उसके लिए वह शतशः और सहस्रशः धन्यवाद के पात्र हैं। पण्डित लेखराम जी और मास्टर आत्माराम जी के परिश्रम के फलस्वरूप उर्दू में लिखा वह दयानन्द-चरित है, जो आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से सन् 1897 में प्रकाशित हुआ। उसे पढ़कर पण्डित लेखराम जी के असाधारण परिश्रम का पता चलता है। उसे देखकर एकदम अवाक् रहना पड़ता है। पंडित जी ने पाँच वर्षों से कम समय में इतना काम किया, जितना दो मनुष्य भी नहीं कर सकते थे। वह बीसियों स्थानों पर गये और सहस्रों मनुष्यों से मिले और ऋषि जीवन सम्बन्धी घटनाओं को लिपिबद्ध किया। उक्त उर्दू चरित ज्ञान की एक खान है। ऋषि का कोई भी जीवन-चरित-लेखक उसकी सहायता के बिना एक पग भी आगे नहीं रख सकता। परन्तु उसमें कुछ त्रुटियाँ हैं, जो न पण्डित लेखराम की हैं और न मास्टर आत्माराम की। उसमें घटनाओं के वर्णनों का विश्लेषण, समीक्षण और उनकी समालोचना नहीं की गई, न घटनाओं को पूर्वापर सम्बन्ध की दृष्टि से एक क्रम में रखा गया है। केवल स्थानविशेष की घटनाओं के भिन्न-भिन्न मनुष्यों के कथनों को एकत्र कर दिया गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि ही घटना के कई प्रकार के वर्णन पाये जाते हैं, एक ही घटना का भिन्न काल में होना पाया जाता है। पाठक चक्कर में पड़ जाते हैं कि किस वर्णन को ठीक मानें। कहीं-कहीं तो यह पता लगना ही कठिन हो जाता है कि घटना का वास्तविक रूप क्या था। घटनाओं का वर्णन एक श्रृंखला में भी नहीं है। यह त्रुटियाँ अवश्य हैं, फिर भी यदि यह पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई होती तो 'ऋषि-जीवन-चरित्' का पूर्णतया लिखना असम्भव हो जाता। इसलिये हमें सदा के लिये पण्डित लेखराम का नितान्त आभारी रहना होगा। जो सामग्री वह एकत्र कर गये हैं, उसका बहुत बड़ा अंश असंगृहीत ही रह जाता, यदि वह इतना परिश्रम न करते।" (महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित, मूल लेखक- पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, संग्रहकर्ता की भूमिका, पृष्ठ 2, प्रथम आवृत्ति, सं. 1990 वि., आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर)

उपर्युक्त उद्धरण से यह सुस्पष्ट होता है कि भारतीय जी ने भी पण्डित लेखराम 'आर्यपथिक' द्वारा संगृहीत

'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' के विषय में प्रायः वही लिखा है, जो पण्डित घासीराम जी ने आज से 82 वर्ष पूर्व 1933 ई० में लिखा था। इन दोनों ही आर्य विद्वानों के एतद् विषयक विचारों में कुछ भी आपत्तिजनक या असंगत नहीं है। मुझे विश्वास है कि कोई भी व्यक्ति अगर निष्पक्ष भाव से पण्डित लेखराम जी द्वारा संगृहीत 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' को पढ़ेगा, उसे पं० घासीराम जी एवं भारतीय जी के उपर्युक्त मन्तव्यों की सच्चाई अवश्य अनुभव होगी।

पण्डित लेखराम जी के लिए सम्मान सूचक शब्द

जिज्ञासु जी को इस बात को लेकर भारतीय जी से शिकायत है कि वे पण्डित लेखराम जी के नाम के साथ 'जी' लगाने से भी बचते रहते हैं और उन्हें कभी 'हुतात्मा' तक नहीं लिखा। (द्रष्टव्यः 'इतिहास प्रदूषण', पृष्ठ 32) जिज्ञासु जी ने अपनी नाराजगी भी उनेक स्थानों पर प्रदर्शित की है। वैसे उनकी बात में तथ्य नहीं है। क्योंकि भारतीय जी ने पण्डित लेखराम के नाम के साथ 'जी' लगाया है। प्रमाण के लिए द्रष्टव्य- (1) 'स्वामी दयानन्द सरस्वती : व्यक्तित्व एवं विचार', पृष्ठ 13, संस्करण 1997 ई०। लिखा है- "...आर्यपथिक जी ने..." (2) 'पण्डित लेखराम कृत म०द०स० का जीवनचरित्र' सम्पादकीय वक्तव्य, पृष्ठ-ग, संस्करण 2007 ई०। लिखा है- "पं० लेखराम जी का यही ग्रन्थ था।" ऐसे ही भारतीय जी ने पण्डित लेखराम जी को हुतात्मा भी लिखा है। द्रष्टव्य- 'आर्यसमाज के विद्वान् लेखक और साहित्यसेवी', पृष्ठ 9, संस्करण 2007 ई०। पण्डित लेखराम जी के लिए वहाँ लिखा गया है- "... एक आततायी ने उन पर छुरे का बर्बर प्रहार कर 6 मार्च, 1897 को उन्हें हुतातमाओं की श्रेणी मे बिठा दिया।"

वैसे भी इतिहास-प्रधान जीवनचरित्रों में चरित्रनायक के लिए स्थान-स्थान पर पूज्य भाव व्यक्त करने वाले शब्दों का बहुलता से प्रयोग करना ठीक भी नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि प्रत्येक लेखक की अपनी मौलिक लेखन शैली व अभिव्यक्ति का ढंग होता है। अतः किसी प्रतिष्ठित लेखक से यह आग्रह करना कि आप हमें पसन्द आए उसी शैली में लिखो, अनुचित है। श्री अरविन्द घोष ने महर्षि के लिए केवल 'दयानन्द' शब्द का ही प्रयोग किया है- बिना उनके नाम के साथ किसी सम्मान सूचक विशेष प्रयुक्त किए। फिर भी श्री अरविन्द की इस शैली को न केवल निर्दोष ही माना जाता है, प्रत्युत उसकी प्रशंसा ही की जाती है।

डॉ० स्वामी सत्यप्रकाश द्वारा भारतीय जी की संस्तुति

जिज्ञासु जी 'इतिहास प्रदूषण' के पृष्ठ 46 पर लिखते हैं कि - "स्वामी सत्याप्रकाश जी सरस्वती ने बिना पढ़े, बिना विचारे (भारतीय जी के) इन दोनों (अर्थात् नवजागरण के पुरोधा' तथा 'ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी') पुस्तकों के प्राक्कथन लिख डाले।" क्या स्वामी सत्यप्रकाश जी जैसे मनीषी साहित्यकार के लिए ऐसी बात लिखना प्रकारान्तर से उनकी अवमानना नहीं है? जिज्ञासु जी ने आगे लिखा है- "इस लेखक की समीक्षा पढ़कर स्वामी जी ने भारतीय जी से कहा था कि अपने ग्रन्थ के साथ एक शुद्धि-अशुद्धि पत्र लगाएँ। इसके बिना बिक्री नहीं होनी चाहिए।" (पृष्ठ 46) परन्तु स्वामी जी ने भारतीय जी से ऐसा कहा था, इस बात का कोई ठोस प्रमाण 'इतिहास प्रदूषण' में हमें पढ़ने को नहीं मिलता है।

सच तो यह है कि भारतीय जी के लिए स्वामी सत्यप्रकाश जी ने प्रशंसात्मक ही लिखा है। जैसे कि 'नवजागरण के पुरोधा' में 'द्वे वचसी' प्रकरण में स्वामी जी ने भारतीय जी के लिए इन शब्दों का प्रयोग किया है- "हमारे ख्यातिलब्ध लेखकों और चिन्तकों में से एक, स्वामी (दयानन्द) जी की विचारधारा से पूर्णतया परिचित, दयानन्द विषयक समस्त ऐतिहासिक सामग्री से परिचित, अनेक ग्रन्थों का प्रणयन करने वाले, सभी प्रकार से स्वामी दयानन्द को जीवन-चरित लिखने के अधिकारी,

स्वामी दयानन्द का जीवन चरित लिखने में संयम से काम लेने वाले, इतिहास लेखक की गौरवपूर्ण विशेषतायुक्त अध्यवसाय और अनुभव के आधार पर ऋषि (दयानन्द) का जीवन-चरित जनता को भेंट करनेवाले, लेखनी के महाधन", इत्यादि। (नवजागरण के पुरोधा' में 'द्वे वचसी', पृष्ठ 2, 4)

भारतीय जी के 'भारतवर्षीय मतमतान्तर समीक्षा' ग्रन्थ की भूमिका स्वामी सत्यप्रकाश जी ने ही लिखी है, जिसमें उन्होंने भारतीय जी को ''आर्ष साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान व योग्य लेखक'' लिखा है। (दृष्टव्य : पृष्ठ-8,20)

भारतीय जी के एक अन्य ग्रन्थ ''ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी' पुस्तक की 'भूमिका' भी स्वामी सत्यप्रकाश जी ने ही लिखी है, जिसमें उन्होंने भारतीय जी को 'आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् इतिहासज्ञ एवं आलोचक' लिखा है और यह भी लिखा है कि भारतीय जी जो कुछ लिखते हैं, अधिकारपूर्वक और अपनी ललित शैली में लिखते हैं। (दृष्टव्य : पृष्ठ 11,15)

इसी 'ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी' पुस्तक की 'भूमिका' में स्वामी सत्यप्रकाश जी ने कर्नल प्रतापसिंह आदि के बारे में जो लिखा है, वह भी पठनीय एवं विचारणीय है। स्वामी जी ने वहाँ लिखा है- "राजस्थान सम्बन्धी उल्लेखनीय व्यक्तियों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह के बाद जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह जी और उनके अनुज कर्नल सर प्रतापसिंह का है। दोनों के सम्बन्ध में भारतीय जी ने विवेचनात्मक विवरण दिए हैं। कर्नल प्रतापसिंह जी ने महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में जो भूमिका निभाई, वह आर्यसमाज के सम्बन्ध में अद्वितीय है। भारतीय जी का दिया हुआ विस्तृत विवरण प्रत्येक विचारक को पढ़ना चाहिए। जोधपुर नरेश का बड़प्पन ही तो था कि ऋषि ने उन्हें जो व्यक्तिगत पत्र लिखे थे, उन्होंने सुरक्षित रखे।" (द्रष्टव्य : पृष्ठ 14-15)

'इतिहास प्रदूषण' में भी प्रदूषण?

जिज्ञासु जी ने 'इतिहास प्रदूषण' में पृष्ठ 33 पर लिखा है- आपने (अर्थात् भारतीय जी ने) जोधपुर नगर की एक कहानी गढ़कर अपने ग्रन्थ में (अर्थात् 'नवजागरण के पुरोधा' में) जोड़ी है। - "कर्नल प्रतापसिंह ने इस समय महर्षि से पूछा कि क्या डॉ० अली मर्दान पर उन्हें विष देने का सन्देह है? यदि ऐसा है तो वे स्पष्ट कहें, ताकि उस पर अभियोग चलाया जा सके। महर्षि ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।" जिज्ञासु जी ने भारतीय जी पर आक्षेप करते हुए लिखा है- "यह कहानी मनगढ़ंत है। प्रक्षेप है। यह इतिहास प्रदूषण है। यह तत्कालीन किसी पत्र में नहीं छपी। यह किसी पुराने जीवनी लेखक ने नहीं लिखी। पं० लेखराम जी, देवेन्द्र बाबू जी और दीवान हरबिलास जी के ग्रन्थों में नहीं।" ('इतिहास प्रदूषण', पृष्ठ 33)

मगर जिज्ञासु जी की उपर्युक्त बात एवं भारतीय जी पर किया गया उनका यह आक्षेप मिथ्या है। क्योंकि महर्षि दयानन्द के सुप्रसिद्ध आद्य जीवनी लेखक श्री बाबू देवेन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय ने भी 'दयानन्द-चरित' में पृष्ठ 615 पर यही बात लिखी है, जो भारतीय जी ने लिखी है। श्री देवेन्द्रनाथ जी ने लिखा है- "कर्नल सर प्रतापसिंह ने महाराज (अर्थात् महर्षि दयानन्द) से बहुत पूछा कि यदि अलीमरदानखाँ ने आपको विष दिया हो तो आप कह दें, हम उस पर अभियोग चलावें, परन्तु महाराज ने कोई उत्तर न दिया।" (2050 वि० संस्करण) इससे यही सिद्ध होता है कि भारतीय जी ने यह बात मनगढ़ंत नहीं लिखी है। इस प्रकार भारतीय जी पर किया गया यह आक्षेप भी निराधार एवं मिथ्या सिद्ध होता है।

नन्हीं को लेकर विवाद उत्पन्न होना दुर्भाग्यपूर्ण

भारतीय जी ने "नवजागरण के पुरोधा" में पृष्ठ 507 पर लिखा है- "नन्ही भगतन की नाराजगी दिनप्रतिदिन बढ़ती गई। उसकी ईर्ष्याग्नि में घृत डालने का काम रामानुज सम्प्रदाय के मुखिया विजयसिंह मेहता

ने किया, जिन्होंने वैष्णव मतावलम्बिनी इस वेश्या को यह कह कर भड़काया कि स्वामीजी सहज ब्राह्मणद्वेषी तथा मूर्तिपजा विरोधी तो हैं ही, वैष्णव मत के कट्टर शत्रु भी हैं।" (प्रथम संस्करण 1983 ई०)

फिर भी जिज्ञासु जी ने अपने द्वारा अनूदित व सम्पादित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्पूर्ण जीवनचरित्र' के भाग 2, पृष्ठ 660 (प्रकाशन वर्ष 2013 ई०) पर लिखा है- "श्रीमान् भारतीय जी ने अपने ग्रन्थ नवजागरण के पुरोधा में नन्ही को वेश्या तो कहीं भी नहीं लिखा।" क्या जिज्ञासु जी की यह बात मिथ्या नहीं है?

'नवजागरण के पुरोधा' में भारतीय जी ने नन्हीं के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया है, वे समुचित हैं। 'दयानन्द सन्देश' के अगस्त 2001 के अंक में प्रकाशित अपने लेख में भी भारतीय जी ने जो कुछ लिखा है, इससे भी यह तो नहीं लगता कि उन्होंने नन्हीं को किंचित् मात्र महिमा मंडित किया है। फिर भी मैं समझता हूँ कि अगर भारतीय जी 'नवजागरण के पुरोधा' में नन्हीं के लिए प्रयुक्त अपने मूल शब्दों पर ही स्थिर रहते और बाद में इस विषय की विवेचना करते समय उन शब्दों को परिवर्तित करने या उन में शब्दान्तर करने की चेष्टा से पृथक् रहते तो अच्छा होता।

वास्तव में नन्हीं के चरित्र के प्रकाशनार्थ विभिन्न इतिहासकारों तथा लेखकों द्वारा किंचित् भिन्नता लिए हुए मगर पर्याय जैसे माने जाने वाले शब्दों का प्रयोग किया गया हो तो उसे लेकर विवाद करने का क्या औचित्य है? उदाहरण के रूप में 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' (सम्पादक- पं० भगवतदत्त, पं. युधिष्ठिर मीमांसक, तृतीय संस्करण) के द्वितीय भाग के सप्तम परिशिष्ट में पृष्ठ 192-193 पर 'नन्हीं भगतन' का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस परिशिष्ट के लेखक राजपूताना के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री ठा. जगदीशसिंह गहलोत (अध्यक्ष पुरातत्व विभाग जयपुर) हैं। इस परिचय में नन्हीं के लिए उस विशेषण का प्रयोग नहीं किया गया है, जिसका अति आग्रह जिज्ञासु जी कर रहे हैं। वहाँ लिखा गया है- "यह जोधपुर नरेश हिजहाईनेस महाराजा जसवंतसिंह बहादुर की रखेली थी।" श्री हरविलास सारदा जी ने ऋषि के अंग्रेजी जीवनचरित में नन्हीं के लिए 'Courtesan' शब्द का प्रयोग किया है, जिसका Concise Oxford Dictionary में अर्थ दिया गया है- a prostitute, especially one with wealthy or upper-class clients.

जिज्ञासु जी ने 'इतिहास प्रदूषण' में 'हमारे आन्दोलन के कुछ ठोस परिणाम निकलने लगे हैं' शीर्षक अन्तर्गत पृष्ठ 107-108 पर लिखा है- "भारतीय जी ने अब अपनी एक पुस्तक ('ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी') के इसी वर्ष (2014 ई०) के संस्करण में नन्ही भगतन को चार बार वेश्या लिखा है। महाराणा जसवन्त सिंह को वेश्यागमन का दोषी मानकर भी तो नन्ही को वेश्या ही बताया।" वस्तुतः लेखक का यह विशुद्ध भ्रम है। क्योंकि भारतीय जी के इस ग्रन्थ के 1986 ई० वाले प्रथम संस्करण, वं 2014 ई० वाले द्वितीय संस्करण में कि जिसको लेकर जिज्ञासु जी ने उपर्युक्त बात लिखी है- इन दोनों संस्करणों में सम्बन्धित प्रकरण में कुछ भी भेद नहीं है। प्रथम संस्करण में भी यही लिखा गया था।

जिस नन्हीं के कारण ऋषि दयानन्द जैसे महामानव की अकाल मत्यु हुई, उस स्त्री के लिए प्रयुक्त अशुभ विशेषणों को लेकर उत्पन्न किए गए इस विवाद को मैं अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण समझता हूँ।

जीयालाल की पुस्तक का नाम

जिज्ञासु जी ने 'इतिहास प्रदूषण' के पष्ठ 145 पर लिखा है- "अपने ग्रन्थ में भारतीय जी ने लाला जीयालाल की कुख्यात पुस्तक 'दयानन्द छल कपट दर्पण' को नया नाम 'दयानन्द चरित्र दर्पण' दिया है।" आपने यह आरोप अपने लेखों में भी दोहराया है। परन्तु वास्तविकता यह है कि जीयालाल की इस पुस्तक की दूसरी आवृत्ति दीघ्र अन्तराल के पश्चात् 1986 वि० में पं० कामताप्रसाद दीक्षित (अमरौधा, जि. कानपुर) द्वारा प्रकाशित हुई थी।

उसमें पुस्तक के आरम्भ में ही लेखक जीयालाल का एक पृष्ठीय 'सविनय निवेदन' छपा हुआ पाया जाता है। इस 'सविनय निवेदन' में स्वयं जीयालाल ने लिखा है- "यद्यपि जो कुछ नाम पुस्तक का प्रथम ही लिखा गया, वह बदला नहीं जा सकता परन्तु हमको यह पुस्तक द्वारा सत्यासत्य का निर्णय कराना है, व्यर्थ किसी का दिल दुःखाना अभीष्ट नहीं। इसलिये आर्य भाइयों के मनोरंजनार्थ इस पुस्तक का नाम आदि पृष्ठ पर 'दयानन्द चरित्र दर्पण' लिखा गया है।"

जिज्ञासु जी ने 'इतिहास प्रदूषण' में पृष्ठ 6 पर लिखा है- "आर्य सन्देश साप्ताहिक दिल्ली में एक लेख देकर (भारतीय जी ने) स्वयं को धरती तल पर आर्यसमाज का सबसे बड़ा इतिहासकार घोषित करके जो जी में आता है, लिखते चले जा रहे हैं।" यही बात पृष्ठ 67 पर एवं अन्य स्थानों पर भी किंचित् भिन्न शब्दों में लिखी गई है। पृष्ठ 19 पर भारतीय जी के कथन का आशय जिज्ञासु जी ने अपने शब्दों में लिखा है। अच्छा तो यही होता कि भारतीय जी के कथन का अपनी भाषा में 'आशय' लिखने के स्थान पर उनके द्वारा लिखे गए मूल कथन को ही विकल उद्धृत कर दिया जाता। वैसे भारतीय जी जैसा मूर्धन्य लेखक अपने लिए ऐसा आत्मश्लाघा युक्त कथन लिखे- यह बात अविश्वसनीय प्रतीत होती है।

'इतिहास प्रदूषण' की मेरे द्वारा की गई संक्षिप्त समीक्षा जो 'आर्य सन्देश' के 31 जुलाई 2015 के अंत में छपी थी, उसे कई आर्य व्यक्तियों ने सराहा है। एक विख्यात आर्य विदूषी ने अपने सन्देश में मुझे लिखा है- "आपने बहुत संयत ढंग से अपनी (व हम जैसे बहुतों की भी) भावना संप्रेषित कर दी है। वस्तुतः पत्रिकाओं के सम्पादकों द्वारा लेखकों को अपना ऋणी बनाने के दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं। जिनके हाथ में मठ, संगठन, पत्रिकाएँ और किसी प्रकार के अधिकार हैं, वे अपनी मठाधीशी के लिए व निजी कुंठाओं के कारण बदले लेने के लिए आर्यसमाज के विवेकवान् लेखकों तक को कैसे दुष्प्रभावित कर रहे हैं, इसका सबल उदाहरण है यह घटना। बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण प्रकरण चल रहा है... कम से कम विरोध का, एक क्षीण-सा ही सही, स्वर उठ रहा है यह पता चलना चाहिए। साधुवाद!"

'इतिहास प्रदूषण' की कुछ विसंगतियाँ जो एकदम से प्रथम दृष्टया दिखलाई पड़ीं, उनकी सप्रमाण समालोचना करने का प्रयास मैंने इस लेख में किया है। मैं किसी का न तो अन्ध अनुयायी हूँ, न वकील हूँ और न ही निन्दक। अपने विवेक के अनुसार जो बात जैसी लगती है, उसे प्रमाण के साथ प्रस्तुत करने का निष्ठापूर्वक प्रयास करता हूँ। लेख के समापन में मैं महर्षि दयानन्द जी का निम्नलिखित उपदेश, जो उन्होंने पूना में दिए गए अपने एक व्याख्यान में दिया था, प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

आप्तोपदेश

"भगवान् पतंजलि ने महाभाष्य में कहा है कि जो दौड़ेगा सो गिरेगा, इसमें कुछ दोष नहीं- **'धावतः स्खलनं न दोषाय भवति'-** इस वचन के आधार से हमारे बोलने में कुछ प्रमाद अथवा अशुद्ध प्रयोग निकल आवे तो पण्डितों को उसका विषाद न मानना चाहिए। हम सर्वज्ञ नहीं, और सब बातें हमें उपस्थित भी नहीं। हमारे बोलने में अनन्त दोष होते होंगे। इसका हमें ज्ञान भी नहीं है। दोष बतलाने पर हम स्वीकार करेंगे। सत्य की छानबीन होनी चाहिए, वितण्डा नहीं होनी चाहिए, यही हमारी बुद्धि में आता है। थोड़ा सा गुण पर भी ध्यान देना चाहिए और दोष को क्षमा करना चाहिए।" (उपदेश-मंजरी, अष्टम उपदेश)

❑❑

सम्पादकीय टिप्पणी

तथ्यों की सत्यता का दायित्व सम्बद्ध लेखकों का है। सुधी पाठक शान्तचित्त एवं पूर्वाग्रह छोड़कर, उभयपक्ष देखकर निर्णय करें।

आर./आर. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S
०५-११/१०/२०१५
भार- ४० ग्राम

अक्टूबर 2015

रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....
ग्राम.....
डा० .....
जिला.....

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।